THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

श्रीभांडासर जैनमंदिर वीकानेर-(राजपूताना)

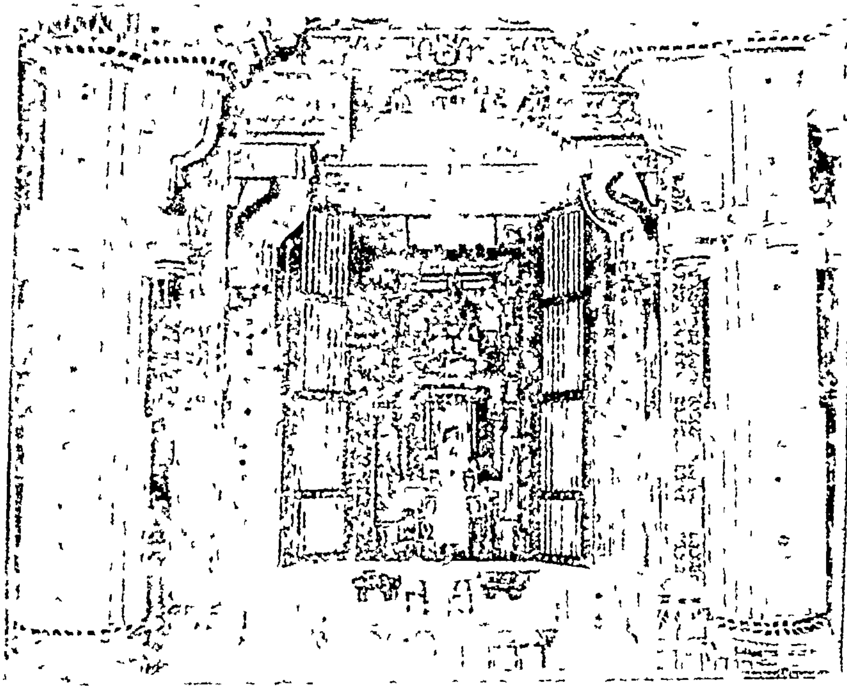

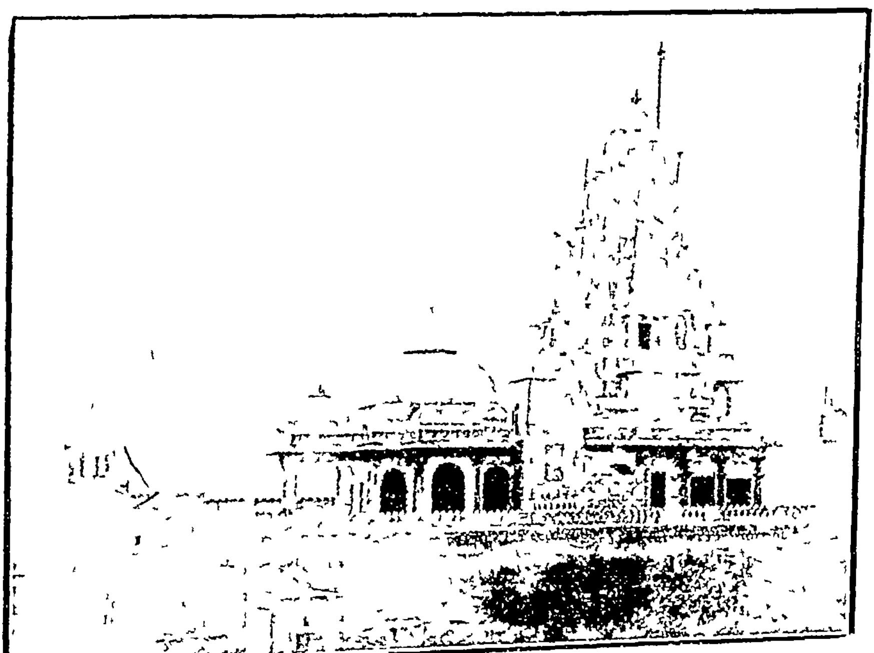

॥ जैनाचार्य १०८ श्रीमद्विजयानन्दसूरिपादपद्मेभ्यो नमः ॥

॥ वन्दे वीरमानन्दम् ॥

॥ आबुजैनमन्दिरोंके निर्माता ॥

लेखक—

न्यायाम्भोनिधिजैनाचार्य १०८ श्रीमद्विजयानन्दसूरिप्रशिष्य
श्रीमान् श्रीवल्लभविजयजी महाराजके शिष्यरत्न पण्डित
श्रीललितविजयजी (पंन्यासजी) महाराज ।

प्रकाशक—

**बीकानेर निवासी सेठ कालूरामजी कोचरकी
सहायतासे श्रीआत्मानन्द जैनसभा—
अंबाला शहर (पंजाब)**

निर्णयसागर प्रेस मुंबई,

वीरनिर्वाण २४४८
आत्म संवत् २७

प्रति संख्या
१०००

विक्रम १९७९
ई० सन् १९२२

" मूल्य आठ आने "

Published by Bapu Gopichand Jain, B. A. LL. B. Secretary
Sri Atmanand Jain Sabha, Ambala City, (Punjab).

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the 'Nirnaya Sagar
Press, 23, Kolbhat Lane, Bombay.

मिलनेका पता—

१ "श्री आत्मानन्द जैनसभा" अंबाला शहर (पंजाब)

२ "श्री जैन आत्मानन्द सभा" भावनगर (काठियावाड)

कालूरामजी लक्ष्मीचंदजी कोचर (सहायक) परिवार वीकानेर.

॥ अर्हं ॥

॥ सहायकका परिचय ॥

"भिन्नमाल" गाम में राजा "भीमसेन" परमार राज्य करता था. उसके उपलदेव (१) आसपाल (२) आसल (३) यह तीन लडके थे। वडा राजकुमार अपने दो मंत्रियोंको साथ लेकर उत्तर दिशाकी तर्फ चल निकला, उस वक्त दिल्लीमें "साधु" नामक नरेश राज्य करता था, 'उपलदेव, उस राजाको मिला और उसको एक नया नगर आवाद करनेकी अपनी इच्छा दर्शाई। दिल्लीपतिके आदेशानुसार उस राजकुमारने ओसिया नामकी नगरी वसाई। राजाकी उसमें सर्व प्रकारसे सहायता, एवं अनुकूलता थी, इस वास्ते इधर उधरके लोग आकर वहां वसने लगे। थोडेही अरसेमें वहां (४) लाख मनुष्योंकी आवादी होगई, जिसमें सवालाख राजपूत थे।

इस अवसरमें "आवुपर्वत"पर आचार्यश्री "रत्नप्रभसूरि"जीने (५००) शिष्योंके साथ चतुर्मास किया। यह रत्नप्रभसूरि "पार्श्वनाथस्वामी" के सन्तानीय "केशीकुमारनामागणधर"के प्रशिष्य और चउद पूर्वधर-श्रुतकेवली थे, तथा निरन्तर महीने महीने पारणा किया करते थे। चतुर्मास पूर्ण होनेके वाद आचार्य महाराज जब गुजरातकी तर्फको विहार करने लगे तब उनके तप संयमसे प्रसन्न होकर भक्तिभावपूर्वक "अंविका" देवीने प्रार्थना की, कि-प्रभु! आप यदि मारवाड़ देशमें विचरें तो अनेक भव्यात्माओंको सुलभ वोधिता और दयाधर्मकी प्राप्ति होवेगी।

इस वातको सुनकर सूरिजी महाराजने अपने ज्ञानमें जब उपयोग दिया तब उनको मारवाड़की तर्फ विहार करनेमें अधिक लाभ मालूम हुआ। इस वास्ते उन्होंने (५००) शिष्योंको तो गुजरातकी तर्फ रवाना किया और आपने सिर्फ एकही शिष्यको साथ लेकर मारवाड़ तर्फ प्रयाण किया।

ग्रामानुग्राम पादविहारसे विचरते हुए आप "ओसिया" नगरीमें आये, ग्रामके निकट [illegible] रहकर आपने मासक्षमणकी तपस्या शुरु की।

॥ प्रभाव ॥

शिष्य अपनी भिक्षाके लिये प्रतिदिन फिरता है परन्तु वहां के लोग प्रायः ऐसे हैं कि, जैन साधु कौन? उनको भिक्षा देनेमें क्या फल? इस बातको वह कुछ समझते ही नहीं। शिष्यने कई दिनों तक तो ज्यों त्यों चला लिया, परन्तु आखीर जब कोईभी उपाय शरीरनिर्वाहका नहीं दीख पडा तो उसने गुरुमहाराजके चरणोंमे निवेदन किया कि-प्रभु! आप तो मेरु शैलसम गंभीर हैं परन्तु मेरे जैसे निःसत्त्वके निर्वाहयोग्य यह क्षेत्र नहीं है!! यहां साधुके व्यवहारको कोई नहीं जानता, शुद्ध आहार सर्वथा नहीं मिलता, और आहार विना शरीर नहीं रहसकता। अब जैसे आपश्रीजीकी आज्ञा।

शिष्यकी बातको सुनकर गुरुमहाराजने सोचा कि, इस संयमी साधुको अन्यक्षेत्रमें लेजानेसे इसका आत्मा स्थिर होजावेगा।

यह सोचकर जब गुरुमहाराज विहार करनेको तयार हुए तब "सचाय-माता" जो कि उन राजपूतोंकी कुलदेवी थी उसने मनमें विचार किया कि, ऐसे तपस्वी, विशुद्धसंयमी, ज्ञानके सागर, मुनिराज मेरी वस्तिमेंसे भूखे चले जावेंगे तो मेरे जैसा अधम आत्मा और किसका होगा?! लोकोक्ति है कि—

"अपूज्या यत्र पूज्यन्ते, पूज्यानाञ्च व्यतिक्रमः।
भवन्ति तत्र त्रीण्येव, दुर्भिक्षं १ मरणं २ भयम् ३ ॥ १ ॥

देवीने आचार्यके पास आकर वहां ठहरनेका आग्रह किया, और कहा-यहां आपको महान् लाभ होगा. सूरिजीने कहा साधुको सर्वत्र समभाव है तथापि अन्नके विना शरीर, और शरीरके विना धर्म नहीं रहसकता।

देवीने कहा-इसप्रकार उपराम होनेकी जरूरत नहीं। आप अपने लब्धिबलसे इस प्रजाको धर्मकी शिक्षा दें, आप चौद पूर्वधर ज्ञानके सागर हैं। इतने दिन तक मुझको आप जैसे सुपात्र मुनियोंके गुणोंका परिचय नहींथा, आज आपके सद्गुणोंको जानकर आपके धर्मोपदेशको सुनना चाहती हुं। देवीकी इस प्रार्थनासे शासनशृङ्गार सूरिजीने देवीको दयाधर्मका महत्व समझाया। देवीको दयाधर्मकी प्राप्ति हुई। अरिहंतदेवके वचनोंकी उसके मनमें परिपक्व आस्था होगई।

॥ चमत्कारको नमस्कार ॥

देवीकी उस भावनाने इतना प्रौढ वल पकडा कि उस (देवी)की प्रार्थना उन (आचार्य)को माननी ही पडी ।

सूरिजीने गाममेंसे रुईकी एक पूनी मंगाई और उसका सांप बनाकर उसको हुकम दिया कि–"जैसे दयाधर्मकी वृद्धि हो वैसे तुम करो"

अब वह सांप वहांसे आकाशके रस्ते उडा और सभामें बैठे राजकुमारको काटकर आकाशमें उड गया. सभामें हाहाकार मचगया । राजाने विषवैद्य, मंत्र, औषधि, जोगी, ब्राह्मण, विषापहारी मणि प्रमुख अनेक उपाय कराये परन्तु उससे लेशमात्रभी फायदा नहीं हुआ । आखीर सब हताश और निराश होगये । सबने रुदन करके राजाकी आज्ञा लेकर कुमारकी अन्त्यक्रिया की । लोग राजपुत्रके शरीरका अग्निसंस्कार करनेको चलेजाते थे कि इतनेमें गुरुमहाराजकी आज्ञासे चेलेने आकर उन सबको रोका और कहा–"हमारे गुरुमहाराजका फरमान है लडका हमको विना दिखाये जलाया न जावे" इस बातको सुनकर राजा उपलदेवके मनमें कुछ आशाके अंकुर फिरसे प्रकट हुए । वह सब लोग वहांसे चलकर सूरिजीके पास पहुंचे और उनके चरणोंमें पडकर रोते हुए लाचारीसे बोले–"प्रभु ! हम निराधारोंको आधार मात्र यह एक लडका है, आप दयाके सागर सर्व जगजीव वत्सल हैं, हम सेवकोंको पुत्रकी भिक्षा देकर सुखी करें हम आपके इस उपकारको कभी न भूलेंगे, हमारी तमाम प्रजा यावचन्द्रदिवाकर आपके उपकारको न भूलेगी, आपके विना हमारा कोई नहीं ।

आचार्य महाराजने कहा, तुम घबरावो मत । लडका जीता है !, मरा कहना ही क्या था ? लडके का जीना सुनतेही राजा प्रजा सब खुश हो गये । राजाने गुरुचरणोंमें शीस नमाकर कहा, प्रभु ! मेरा लडका जीता रहेगा तो मैं यावज्जीव तक आपका ऋणी होकर आपकी आज्ञामें रहूंगा, आप मुझे जैसे फरमावेंगे मैं वैसेही करूंगा ।

आचार्य महाराजने अपने योगबलसे उस सांपको बुलाया और आदेश दिया कि–"तुम अपने विषको चूसलो" इतना आदेश पातेही सांपने कुमारके शरीरमेंसे जहर चूसलिया । कुमार निराबाध उठके बैठ गया और हैरान होकर पिताको पूछने लगा कि ये सब लोग यहां इकट्ठे क्यों हुए हैं ?

राजाने हर्षके आंसु वर्षाते हुए पुत्रको सारा हाल सुनाया और कहा-बेटा! इन महायोगीश्वरके प्रौढप्रभावसे आज तेरा पुनर्जन्म हुआ है। इसलिये सकुटुंब अपने सब इन महापुरुषके ऋणी हैं।

॥ प्रतिज्ञापालन ॥

गुरुमहाराजका महा अतिशय देख उनको साक्षात् ईश्वरका अवतार मानकर उनके चरणोंमें पडे और प्रार्थना करने लगे कि स्वामीनाथ! आप हमारा राज्यभण्डार सर्वस्व लेकर हमको कृतार्थ करें।

आचार्य बोले हमने तो कोई राज्यकी लालसासे यह काम नहीं किया, अगर हमें राज्यकी इच्छा होती तो अपने पिताका राज्यही क्यो छोडते? इस वास्ते स्वर्ग मोक्षका देनेवाला, अक्षय सुखका देनेवाला, सर्वजीवोंको आनन्दका देनेवाला, सर्वज्ञ अरिहंत परमात्माका कहा **विनयमूल** धर्म ग्रहण करो।

राजाने प्रार्थना की कि प्रभु! आप मेरे सर्वप्रकारसे उपकारी हैं, धर्माधर्मका स्वरूप मैं कुछ नहीं जानता, आप जैसे फरमावेगे वैसा मैं अवश्य अगीकार करुंगा।

सूरिजी जानतेथे कि "यथा राजा तथा प्रजा" राजा धर्मी हो तो प्रजाभी धर्मी होती है यह सोचकर आचार्य महाराजने सवालाख मनुष्यों सहित राजाको जैन धर्मका उपासक बनाया और उन सवालाख मनुष्योको दृढ जैन-धर्मी बनाकर उनका "ओसवाल" नामका एक वंश स्थापन किया। राजाने चरम तीर्थंकर "श्रीमहावीर स्वामी"का मन्दिर बनवाकर सूरिजी महाराजके हाथसे उस मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई। प्राचीन इतिहासोंसे पता चलता है कि मारवाड़ राज्यान्तर्गत 'कोरटा' गामके श्रीसघनेभी श्रीमन्महावीर स्वामीका मन्दिर बनवाया, और रत्नप्रभसूरिजीको उस मन्दिरकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त पूछा तथा अति आग्रहसे प्रार्थना की कि उस मौकापर आप श्रीजीने ज़रूरही पधारना आपश्रीजीके हाथसेही हम प्रतिष्ठा करवायेगे।

आचार्य महाराजने उनको मुहूर्त्त दिया, परन्तु उसी मुहूर्त्तपर "ओसि-याजी"में प्रतिष्ठा करानेका वचन आप राजाको देचुके थे, इस वास्ते आत्म-लब्धिसे दो रूप बनाकर एकही दिन एकही मुहूर्तमें आपने दोनों जगहकी

प्रतिष्ठा करवाई। इससे यह सिद्ध हुआ कि वीर संवत् (७०) में आचार्यश्री "रत्नप्रभसूरि"से ओसवाल वंशकी स्थापना हुई उस दिनसे इन लोगोंका फैलाव देसोदेशमें होनेलगा।

कहीं येह लोग व्यापारी होते हैं, कहीं कर्मचारी होते हैं और कहीं खेतीवाडीका धंधाभी करते हैं। जिस ग्रन्थकी यह प्रस्तावना लिखी जाती है उसके सहायक अर्थात् आर्थिक सहायताके देनेवाले महाशयभी पूर्वोक्त वंशके एक धर्मप्रिय कुटुंबी हैं। आपका निवास स्थान है **बीकानेर** (राजपूताना)। आपका शुभनाम है श्रीयुत "कालुरामजी कोचर"।

[॥ आपके किये शुभकार्योंकी नामावली ॥]

विक्रम संवत् (१९७४) में आपकी तर्फसे "जयसलमेर"का संघ निकला था, जिसमें मुनिश्री अमीविजयजी आदि (२४) साधुसाध्वीका समुदाय था।

"जयसलमेर"के निकटवर्त्ति एक किला है, जिसमें अनेक जिनमन्दिर और हजारोंकी तादादमें प्राचीन जिनप्रतिमाएँ हैं।

यद्यपि जयसलमेर प्राचीनकालके शत्रुंजय, गिरनार, आबु, अष्टापदं, सम्मेतशिखर, पावापुरी, चंपापुरी, केसरियानाथजी, कांगडा, कुल्पाक, अन्तरिक्षजी, जैसे तीर्थों जैसा प्राचीन तीर्थ नहीं है, तथापि कितनेक समयसे बीकानेर नागौर फलौधी ऐसेही मारवाडके औरभी अनेक गाम नगरोंके संघ आकर यहांकी यात्राका लाभ लेते हैं।

एक समयका जिकर है कि गुजरात देशके प्रसिद्ध राज्यगादीके पाटनगर **पाटण**पर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ उस समय कुमारपालका अन्तकाल हो चुकाथा, शासनप्रेमी अनेक श्रावकोंने अनेक जिनप्रतिमाएँ और संख्याबद्ध आगम ग्रन्थ लाकर जयसलमेर शहरके मन्दिरोंमें और भंडारोंमें रखे।

ऐसे ही—

कुमारपालके स्वर्गारूढ हुए बाद जब 'अजयपाल'ने उपद्रव मचायाथा तब कुमारपालके मुख्य मंत्री **उदयन**के लडके **आम्रभट्ट**ने कुमारपालके किये कराये धर्मकार्योंका ध्वंस देखकर (१००) ऊंटोंपर शास्त्र–सिद्धान्त लादकर जयसलमेर पहुंचाये थे। पिछले कुछ सैंकडे वर्षोंमें यहां अनेक

विद्वान् जैन साधुओंके चौमासेभी होते रहे हैं । वहां स्थिति करके उन उन महात्माओंने संसारके उपकारके लिये अनेक स्वसम्प्रदाय परसम्प्रदायके ग्रन्थोंकी रचना की है।

आचार्य श्री "सोमप्रभसूरिजी"ने जिस समय मारवाड़ देशमें पानीकी दुर्लभता देखकर जैन साधुओंका मरुदेशमें विचरना वंद कर दिया था उस समय जयसलमेरमें जैनधर्मके (६४) मन्दिर थे । साधुओंके विहारके रुक जानेसे एक समय ऐसा आगया था कि, उन मन्दिरोंके दरवाजोंपर कांटे दिये जा रहेथे, परंतु कुछ क्षेत्र देवताकी सुकृपाके प्रभावसे सोमप्रभ-सूरिजीके समयका क्रूर ग्रह मानो हट गया और जगद्गुरु श्री"विजयहीर-सूरि"जीके दादागुरु श्री"आनन्दविमलसूरिजीने हिम्मत करके संकटोंको सहन कर मारवाड़ देशमें पादविहार करके जयसलमेरको पावन किया और मन्दिरोंके कांटोंको उठवाकर उपदेशद्वारा प्रभुप्रतिमाओंकी सेवा पूजा शुरु करवाई ।

सोमप्रभसूरिजीका सत्तासमय पट्टावलियोंमें नीचे मूजब लिखा है—१३१० मे जन्म, १३२१ मे दीक्षा, १३३२ में आचार्यपद्वी ।

आनन्दविमलसूरिजीका समय १५४७ मे जन्म १५५२ मे दीक्षा, १५७० मे सूरिपद्वी ।

[प्रस्तुत अनुसन्धान]

संघ आनन्दके साथ माघ महीनेमें बीकानेरसे रवाना हुआ. साथमें घोडे, ऊंट, हथियार बद्ध योद्धे संघकी शोभा बढा रहे थे ।

सब बाल वृद्धकी अनुकूलताके लिये सिर्फ चार चार कोसके पडाव रखे गये थे । ठिकाने ठिकाने स्वधर्मीवत्सल होते चले जाते थे, गरीबोंको दान दिया जाता था । फलोधीमे पहुंचकर संघपतिने सकल संघकी भक्ति कीथी, एवं फलोधीके संघनेभी श्रीसघकी योग्य भक्ति कीथी ।

पोकरणाफलोधीमें जीर्णोद्धारकाभी पुण्य आपने उपार्जन किया । साथके भाग्यवान अन्यश्रावकोंनेभी यथा शक्ति लाभ लिया ।

जयसलमेरमें पहुंचकर आपलोगोंने बडे भक्तिभावसे यात्रा की, भण्डारमेंभी आपने अच्छी रकम दी । वहां आपवे स्वधर्मीवत्सलभी बडे भावसे किया । इस प्रसिद्ध और श्लाघनीय कार्यमें आपने लग भग (१७०००) रुपया खर्च किया है । बीकानेरमें प्रायः कोचर सरदार ऐसे धार्मिक कार्योंमें धर्मवीरही

कहे जाते हैं । **ओसियाजीमें** जब आप पहुंचेथे तब वहांभी पूजा, प्रभावना, देवगुरुकी भक्तिके अतिरिक्त एक साल–मकान बंधाकर यात्रालु लोगोंकी कितनीक तकलीफोंको रफा किया ।

चरम तीर्थकर–सिद्धार्थनन्दन श्रीमन्महावीर देवकी निर्वाणभूमि **श्रीपावा-पुरीजीमेंभी** आपकी तर्फसे एक विशाल साल बनी है जिसमें अनेक देश-देशान्तरीय जैन यात्रालु आकर आराम पाते हैं ।

बीकानेरमें विमलनाथजीके मन्दिरमे जो टालिया जडीगई हैं जिनके जरिये मन्दिर देवमन्दिरसा दीख रहा है वहभी आपकी तर्फसे जडाई गई हैं ।

अभी गतवर्षमें सुप्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय जैनाचार्य १००८ **श्रीमद्विजया-नन्दसूरि** (आत्मारामजी) महाराजके शिष्य १०८ श्रीमान् **श्रीलक्ष्मी विजयजी** महाराजके शिष्य १०८ **श्रीहर्षविजयजी** महाराजके शिष्य **श्रीमद्वल्लभविजयजी** महाराजके शिष्यरत्न पंन्यास **श्रीसोहनविजयजीके** सदुपदेशसे विद्याप्रचारके लिये जो एक भगीरथ फंड हुआ है उसमेंभी आपने रु. २१००० देकर अपनी पूर्ण उदारता प्रकट की है ।

विमलनाथजीके मन्दिरमें टालियोंके सिवाय आपकी तर्फसे एक बंगली–वेदीभी तयार हुई है जिसमें आप प्रभुप्रतिमाकी स्थापना करना चाहते हैं ।

बीकानेर शहरमें और कलकत्तामें जो जो धर्मकार्य उपस्थित होते हैं उन प्रत्येक कार्योंमें आप अपनी शक्तिका अच्छा सदुपयोग कर रहे हैं । जब कभी किसी मुनिमहाराजका चतुर्मास होता है तो उनके दर्शन वन्दनके लिये आये हुए समानधर्म्मी लोगोंकी आप जो सेवा उठाते हैं देखकर आत्मा प्रसन्न होजाता है । खास करके ऐसे ऐसे धार्मिक कार्योंमें आपके लघुभ्राता श्रीयुत **लक्ष्मीचंद्रजी** कोचर सहर्ष अधिक लाभ उठाते हैं यहभी आपके एक गांभीर्यका नमूना है । इस पुस्तकके प्रकाशनका लाभभी आपने ही प्राप्त किया है अतः आप धन्य वादके पात्र हैं । शासन देवतासे यही प्रार्थना की जाती है कि आप अपनी जिंदगीमे ऐसे ऐसे अनेक शुभकार्य करके अपने मनुष्य जन्मको सफल करें । इति शुभम् ।

श्रीआत्मानन्द जैनसभा.

अंबाला शहर (पंजाब).

श्रीमुनिसुन्दरसूरिविरचित—

श्रीअर्बुदगिरिकल्पः ॥

ॐ नमः ॥ भक्तिप्रणम्रसुरराजसमाजमौलि-
मन्दारदाममकरन्दकृताभिषेकम् ।
पादारविन्दमभिवन्द्य युगादिभर्तुः,
श्रीमन्तमर्बुदगिरिं प्रयतः स्तवीमि ॥ १ ॥

यः स्वीकृताचलपदेन महेश्वरेण,
कामान्तकेन गणनाथनिषेवितेन ।
शोभा बिभर्ति परमां वृषभध्वजेन,
श्रीमानसौ विजयतेऽर्बुदशैलराजः ॥ २ ॥

यः सन्ततं परिगतो बहुवाहिनीभि-
र्नानाक्षमाधरनिषेवितपादमूलः ।
राजत्वमद्रिषु बिभर्ति गिरीन्द्रसूनुः ॥ श्रीमा० ॥ ३ ॥

आदिप्रभुप्रभृतयो यदुपत्यकायां
कासह्रदादिषु पुरेषु जिनाधिनाथाः ।
प्रीणन्ति दृष्टिममृताञ्जनवज्जनस्य ॥ श्रीमा० ॥ ४ ॥

श्रीमातरं नृपतिपुञ्जसुतां विवोढुं
पद्या द्वियुग् दश निशि प्रहरद्वयेन ।
योगी व्यधत्त निजमन्त्रबलेन यत्र ॥ श्रीमा० ॥ ५ ॥ (?)

मन्ये तदस्ति भुवने न खनी न वृक्षो
नो वल्लरी न कुसुमं न फलं न कन्दः ।
यद्दृश्यतेऽद्भुतपदार्थनिधौ न यत्र ॥ श्रीमा० ॥ ६ ॥

यत्तुङ्गशृङ्गमवलम्ब्य रवे रथस्य
रथ्या नभस्यऽनवलम्बविहारखिन्ना ।
मध्यन्दिने किमपि विश्रममाप्नुवन्ति ॥ श्रीमा० ॥ ७ ॥

रम्यं यदीयशिखरं सुखमावसन्ति
ग्रामा द्विषा द्विषदधृष्यरमाभिरामाः ।
नैके च गोगलिकराष्ट्रिकतापसाद्याः ॥ श्रीमा० ॥ ८ ॥

सौधेषु तुङ्गशिखराङ्गणसङ्गतेषु
यत्रान्तरे प्रसृमरैरघुदीप्रदीपैः ।
दीपोत्सवः स्फुरति नित्यमपि क्षपायां ॥ श्रीमा० ॥ ९ ॥
नागेन्द्रचन्द्रप्रमुखैः प्रथितप्रतिष्ठः
श्रीनाभिसम्भवजिनाधिपतिर्यदीयम् ।
सौवर्णमौलिरिव मौलिमलङ्करोति ॥ श्रीमा० ॥ १० ॥
प्राग्वाटवंशमुकुटं विमलाह्वमन्त्री
नाभेयचैत्यमुरुपैत्तलमूलबिम्बम् ।
आधत्त यत्र वसुदिग्गजदिग् १०८८ मितेऽब्दे ॥ श्रीमा० ॥११॥
अम्बां प्रसाद्य विमलः किल गोमुखस्य
संवीक्ष्य मूर्तिमुपचम्पकमात्तभूमिः ।
तीर्थं न्यवीविशत यत्र...तेऽपतुष्टः ॥ श्रीमा० ॥ १२ ॥ (?)
अग्रे युगादिजिनसद्मनि शिल्पिनैक-
रात्रेण यत्र घटितोऽश्ममयस्तुरङ्गः ।
रङ्गं तरङ्गयति सन्ततमन्तरङ्गं ॥ श्रीमा० ॥ १३ ॥
स्नात्रोत्सवं प्रथमतीर्थकरस्य जन्म-
कल्याणके बहुदिगागतभव्यलोकाः ।
तन्वन्ति यत्र दिविजा इव मेरुशैले ॥ श्रीमा० ॥ १४ ॥
श्रीनेमिमन्दिरमिदं वसुदन्तिभानु-
वर्षे कषोपलमयप्रतिमाभिरामम् ।
श्रीवस्तुपालसचिवस्तनुते स यत्र ॥ श्रीमा० ॥ १५ ॥
चैत्येऽत्र लूणिगवसत्यभिधानके त्रि-
पञ्चाशता समधिका द्रविणस्य लक्षैः ।
कोटीर्विवेच सचिवस्त्रिगुणाश्चतस्रः ॥ श्रीमा० ॥ १६ ॥
यत्रोत्तरेण यदुपुङ्गवचैत्यमम्बा-
प्रद्युम्नशाम्बरथनेम्यवतारतीर्थान् ।
पश्यन् जनः स्मरति रैवतपर्वतस्य ॥ श्रीमा० ॥ १७ ॥
यस्यानुचैत्यमवलोक्य जिनौकसां द्वि-
पञ्चाशतं गुरुतरप्रतिमान्वितानाम् ।
नन्दीश्वरादतिशयं प्रवदन्ति सन्तः ॥ श्रीमा० ॥ १८ ॥

चैत्यानि यत्र भगवच्चरणैर्विचित्रैः
सङ्गीतकैर्नरसुरासुरमूर्त्तिभिश्च ।
सत्सूत्रधारघटिते रमयन्ति चेतः ॥ श्रीमा० ॥ १९ ॥
मैनाकमेतदनुजं कुलिशात्समुद्रः
संरक्षति स्म खलु येन पुनः समुद्रौ ।
त्रातौ भवात् स विमलः स च वस्तुपालः ॥ श्रीमा० ॥ २० ॥
नागाश्वविश्वसमये जिनचैत्यमाद्यं
यत्रोद्धृतं महणसिंहजलल्लनाम्ना ।
श्रीचण्डसिंहसुतपीथडकेन चान्यत् ॥ श्रीमा० ॥ २१ ॥
भीमश्चकार विशदारमयात्युदार-
नाभेयविम्बरुचिरं जिनमन्दिर प्राक् ।
सङ्घेन सम्प्रति तदुद्ध्रियते स्म यत्र ॥ श्रीमा० ॥ २२ ॥
श्रीमच्चुलूककुलचन्द्रकुमारपाल-
निर्मापितं सुकृतिनां कृतनेत्रशैत्यम् ।
श्रीवीरचैत्यमवतंसति यस्य शीर्षं ॥ श्रीमा० ॥ २३ ॥
यत्रौरियासकपुरे प्रभुराश्विरेयः
श्रीसङ्घनिर्मितनवीनविहारसंस्थः ।
सम्यग्दृशां प्रमदसम्पदमादधाति ॥ श्रीमा० ॥ २४ ॥
यत्रार्बुदाख्यभुजगस्तलसंस्थितः षण्-
मासात्यये चलति तेन गिरेः प्रकम्पः ।
चैत्येषु तेन शिखराणि न कारितानि ॥ श्रीमा० ॥ २५ ॥
यत्राम्बिका प्रणतवाञ्छितकल्पवल्ली
क्षेत्राधिपश्च शमयत्युपसर्गवर्गम् ।
सङ्घस्य तीर्थनमनार्थमुपागतस्य ॥ श्रीमा० ॥ २६ ॥
एवं श्रीवरसोमसुन्दरगुणं यः श्रीयुगादिप्रभुं
ध्यायन् जल्पति कल्पमर्बुदगिरेर्नैपुण्यराजन्मतिः ।
हर्षोत्कर्षवशः प्ररूढपुलकः स्थानस्थितोऽप्यश्नुते
धन्योऽसौ परमार्थतः प्रतिकलं तत्तीर्थयात्राफलम् ॥ २७ ॥

(इति) श्रीअर्बुदाचलकल्पः ॥

श्रीजैनमंदिर-आबू (राजपूताना)

वन्दे वीरमानन्दम् ॥

आवुके जैनमन्दिरोंके निर्माता ॥

॥ पीठबन्धः ॥

गुजरातके प्रसिद्ध शहर पाटणमें जब राजा भीमदेव राज्य करते थे तब उनके पास 'वीर' नामके एक अच्छे कुशल मंत्री रहते थे, वह राजनीति-प्रजाधर्म स्वामीसेवा-राज्यरक्षा-धर्म-साधन-इन कार्योंमें बडे ही सिद्धहस्त थे।

जिस समय की घटना का यह उल्लेख है उसवक्त गुजरात-भरमें पवित्र जैनधर्मका बडा जोर था, राजकीय न होने-परभी राजकीय जैसा वर्तावं सर्वत्र इस धर्मका मालूम देता था, इसमें कारण केई थे, जिन मे २ कारण मुख्य थे—

(१) एक तो पाटण के आवाद करनेवाले महाराजाधि-राज वनराज पर जैनाचार्य श्रीशीलगुणसूरिजीका असीम उपकार था, पाटणके वसानेके समय एक विशाल उन्नत दिव्य जिनमन्दिर बंधाकर उसमें 'पंचासर' गामसें लाकर श्रीपा-र्श्वनाथस्वामीकी प्रतिमा विराजमान की गईथी, और वन-राज चावडाने आराधकरूपसें अपनी मूर्त्ति भी उस मन्दिरमें रखवाईथी, जो कि पाटणमें पंचासरा पार्श्वनाथजीके उस मन्दिरमें अभीतक भी कायम है, इसलिये जो जो राजा

पाटणकी गादीपर बैठतेथे वोह सर्व जैनधर्मका पूरा मान रखते थे। वनराजके राज्यारोहण समय चांपा शेठकों पूर्वकी प्रतिज्ञा के अनुसार मंत्रीपद दिया गया था, और वह चांपा शेठ चुस्त जैनधर्मी थे, इसलिये उनकी औलादमें जो जो मंत्री होते गये वोह सब जैनधर्मके पक्के उपासक होते गये। जैसे वनराज श्रीशीलसूरिजीको अपने निकट और प्रकट उपकारी समझकर उनसें योग्य वर्त्ताव करते थे, ऐसे वनराजके पीछे सिंहासना-रूढ हुए २ योगराज-क्षेमराज-भूवड़राज-वैरिसिंह-रत्नादित्य-सामन्तसिंह, इन ६ छही राजाओं ने भी जैनमुनियों की आज्ञाओंका अच्छीतरह से पालन किया था। (१९६) वर्षके बाद जब पाटणकी सत्ता चौलुक्य (सोलंकी) लोगोंको मिली तब प्रस्तुत वंशके राजा-वृद्धमूलदेव-चामुंडराज-वल्लभ-राज-दुर्लभराज-भीमदेव-भी जैनधर्मकी जैनचैत्योंकी और साधुओं की वैसीही तनमनसें उपासना करते रहे।

(२) दूसरा कारण यहभी था कि वनराज चावडासें लेकर जैनविद्वान् मुनि राजसभाओंमें निरन्तर पधार कर राजा और राज्यकर्मचारियोंको धर्मपरायण किया करते थे।

(३) तीसरा-मंत्री सामन्त नगरशेठ वगैरह सब राज्य-कार्यवाहक प्रायः जैनधर्मानुयायी होते थे, वह अपनी निः-स्वार्थ और निष्कपट भक्तिसें राजाओंको अपने आधीन रखा करते थे।

वीरमंत्री भी एक धर्मात्मा, नीतिविचक्षण और पापभीरु राज्यहितचिन्तक एवं लोकप्रिय व्यक्ति थे, इस लिये इनपर

राजा और प्रजा सबका पूरा प्रेम था. इसके समयमें धुरंधर विद्वान् स्वपरसमय ज्ञाता वादी-जीपक शास्त्रसंपन्न श्रीमान् द्रोणाचार्य, सूराचार्य, जिनेश्वरसूरि, वगैरह अनेक आचार्य पाटणमें रहते थे। और द्रोणाचार्य तो भीमराजके संसारपक्षकेभी संबंधी थे, सूराचार्य—द्रोणाचार्यजीके भाई सामन्तसिंह के लडके थे, जिनेश्वरसूरिजीसें तो भीमदेवने बाल्यावस्थामें शास्त्राभ्यासभी किया था, इसलिये इन तीनोंही आचार्यौंको राजा भीम बडी सन्मानकी दृष्टिसें देखते थे।

वीरमंत्रीका 'विमलकुमार' नाम एक लडका था, यह लडका अच्छा विनीत मातापिताका भक्त देवगुरुका उपासक और अति मर्यादाशील था, बुद्धिबल इसका बडा प्रौढ चमत्कारी था, हरएक विपयकों यह एक या दो दफा देखने सुननेसेंही सीखजाता था। इसका रूप तो ऐसा सुन्दर था कि जब यह घोडेपर सवार होकर नगर और नगरके बाहिर घूमनेको निकलता तब हजारों स्त्रीपुरुष इसकी मोहिनीमूर्त्तिको प्रेमसें देखतेथे। स्त्रीवर्गको तो यह जादु जैसा मालूम पडता था।

॥ विकट घटना ॥

विमलकुमारकी उमर अभी छोटी ही थी कि विमल के पिता वीरमंत्रीने वैराग्य में आकर संसार छोड जैनमुनियोंके पास दीक्षा ले ली थी।

एकसमयका जिकर है कि विमल कुमार घोडेपर चढा हुआ बाजारमें जा रहा था, घोडा मध्यमगतिसे दौडरहा था। किसी

निमित्तसें घोडा चौंक पडा और बहुत प्रयत्न करनेपर भी विमल कुमार उसे संभाल न सका। दैवयोग सामने एक स्त्रियोंका मंडल श्रीपंचासराजीके दर्शन कर अपने अपने घरोंकी तर्फ आ रहा था, और एक तर्फ दामोदरमंत्री की पालखी आरही थी, घोडा वश न रहा, कूदकर विषमगतिसें उन स्त्रियोंकी तर्फ दौडा, स्त्रियें अपनी जान बचाकर इधर उधर भाग गई। दामोदर मंत्री तो पहलेसें ही श्रावकवर्गपर चिडे रहते थे, जब उन्होंने इस घटनाको खुद अपने सामने देखा तो उन्होंने पालखी वहां ही ठहराली और क्रोधमें आकर बोले- अरे विमल! आम बाजारोंमे किसी भी तरहका खयाल न रखकर घोडे दौडाने यह तुझे किसने हुकम दिया है? इस तरह राहदारीके रस्तेपर आते जाते लोगोंको त्रास देनेके लिये ही बेदरकार होकर घोडेपर चढकर बाजारमें फिरना, और मनमें आवे वैसे घोडेको दौडाना यह तुझे बिलकुल उचित नहीं है; याद रखना यह तेरी उद्धताई जहांतक महाराजाके कानतक नहीं पहुंची वहांतकही यह तूफान तुं करसकता है, परन्तु अब अन्यायकी खबर महाराजा साहिब तक पहुंचानी पडेगी।

दरहालतमें प्रत्यक्षरूपसे इस वर्त्तावमें विमलकुमारकी भूल भी मालूम पडती थी, तोभी इस अनुचित घटनाको उसने जान बूझकर उपस्थित नहीं किया था। उसका हृदय निर्दोष था, वह वीरमंत्रीका लडका था, उसके पिताके मंत्रीपद भोगते हुए वह राजकुमार न होकरभी महाराज भीमदेवकी गोदमें खेलाहुआ था।

इस लिये उसने उस राजमान्यमंत्रीसे किसीभी प्रकारका खौफ न खाकर उत्तर दिया—साहिब! इस वक्त मैने अपने घोडेको रोकनेके लिये कुछ कसर नहीं की तोभी जब घोडा मेरी शक्तिसे बाहिर होगया तो उसमें मेरा क्या दोष? आप मेरे निर्दोष होनेपर भी मेरी इस थोडीसी भूल को महाराज तक पहुंचाना चाहते हैं तो भले महाराज जो मुझे बुलायेंगे तो मालिक हैं मगर उनके सामने खडा होकरभी इस सत्य हकीकतको जाहिर करनेमें मैं कुछ दोष नहीं समझता।

विमलके इस जबाबको सुनकर मंत्रीको औरभी गुस्सा आया, वह तिरस्कारसे बोला—

"वीरमंत्रीका पुत्र जानकर मैं आज तेरी इस भूलको मुआफ करताहूं। जा चला जा!! मगर ख्याल रखना कि ऐसी भूल फिर कभी न होनी पावे" यह कहकर दामोदरमंत्री आगे बढे और विमलकुमार पीछे लौटकर अपने घर चला आया।

॥ स्थानान्तर ॥

विमलकुमारके चेहरे पर सुस्ति छारही थी, वह प्रसन्नचित्तसे किसीके साथभी बोलता नहीं था, उसकी माता वीरमती एक वीरपत्नी थी और बडी चतुरा थी, उसने बच्चेको छातीसे लगाया और धीमेंसे पूछा, बेटा! आज तेरे चेहरेपर उदासी क्युं छा रही है? आज तूं किसीसेभी खुश होकर बोलता नहीं क्या कारण?। कुमारने आजकी कुल हकीकत अपनी माताके आगे यथार्थरीतिसे कह सुनाई, इस बातको सुनकर उसे ख्याल आया कि मैने आगे भी कईदफा सुना है

कि, ब्राह्मणमंत्री मेरे लडके के लिये मनमें आवे वैसा अधिक और अनुचित बोलते हैं, आज तो उस बातका अनुभव भी होगयाहै। मनमें ही कुछ ऊहापोह करके उसने निश्चय किया कि लडका जहांतक लायक उमर न हो जाय वहांतक यहां न रहकर अपने पिता के घरपर चलाजाना और वहां रहकर इस भाविकालके कुलाधार पुत्रकी रक्षा करनी उचित है।

यह विचार उसने अपने पुत्रकोभी कह सुनाया, और जब मां बेटा दोनों इस कार्यमें सहमत होगये तो फौरन बिलकुल थोडे समयमें घरकी तमाम व्यवस्था करके अपनी मालमिलकत साथ लेकर उन्होने पाटणको छोड दिया।

वीरमती के पितृपक्षकी स्थिति साधारण थी, पाटण के थोडेही फांसलेपर एक सामान्य गाममे वह रहते थे, गामकी रीतिमूजब व्यापार वाणिज्य करके अपना गुजरान चलाते थे।

वीरमती पहलेसें अपने गुजारेकी सामग्री साथही लेकर गईथी, इसलिये वहां रहनेमें उनको किसी प्रकारकी तकलीफ मालूम नहीं दी, और नाही उनके भाई वगैरेह को कुछ कष्टभी मालूम दिया। विमलकुमारका मनोहररूप उस गामके लोगोंको, उसमेंभी खासकर स्त्रियोंको बडाही मोहक था इसलिये कितनेक प्रसंग कुमारको विकट भी आ जाते परन्तु कुमारका पिता दीक्षाग्रहण करता हुआ पुत्रको कहगया था कि, बेटा! अन्यायसे बचना। इसलिये अव्वल तो कुमार किसीके घर जाताही नहीं था, अगर कहीं कदाचित् जानाभी पडता तो अपनी मर्यादाको वोह अपना जीवन समझता था।

॥ सर्वत्र सुखिनां सौख्यम् ॥

पाटण के अमीरलोगों में श्रीदत्त शेठ भी वडे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे इनको नगरशेठकी पद्वी थी, इसलिये शहरमें कुल लोग उनकी इज्जत करते थे। पाटणके श्रीसंघमें शेठजी अच्छे माननीय और प्रतिष्ठापात्र थे, व्यापारी लाइन में आप वडे सिद्धहस्त थे, प्रख्यात धंधे प्रसिद्ध व्यापार आपके अनवरत अभ्यस्त थे, राजदरबारमें श्रीदत्तशेठकी वहुत अच्छी प्रतिष्ठा थी, महाराजा भीमदेव जब राजसिंहासनपर बैठे थे तव राजतिलक इसी प्रसिद्ध भाग्यशालीके हाथसे हुआ था। शेठ-जीके एक श्रीदेवी नाम सुरूपा सुभगा कन्या थी, अभीतक इसकी सगाई करनेके लिये घर देखा जाताथा परन्तु सर्वगुण संपन्न स्थान अभीतक नहीं मिलाथा। जिस दिन विमलकुमारके घोडेने तूफान मचाया उस दिन सामने जो स्त्रीमंडल आ रहा था उसमें श्रीदेवीभी शामिल थी, उसने जब विमलकुमारकों देखा तो उसके हृदयमन्दिरमें जो स्नेहभावना उत्पन्न हुइथी, उसके कोमल हृदयपर जो स्नेहशस्त्र पडाथा उसे कविलोक अनेक रूपसें वर्णन करें, लेखक अनेक युक्तियोंसें लिखें तोभी वोह उस मनोगत भावकी महिमा अगोचर है, वोह भावना उसके अनुभविकों ही मालूम होती है।

श्रीदत्तके एक चन्द्रकुमार नाम पुत्र था, इस सुपुत्रके सद्व-र्त्तनसें शेठजी वडे सुखी और स्वस्थ थे। किसी सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठापात्र धनाढ्य शाहुकारकी ललिता नामक पुत्रीके साथ चन्द्रकुमारका पाणिग्रहण हुआ हुआ था। ललिता अपने

पति सासु श्वशुर और छोटे बडे सभी कुटुंबियोंसे अतिउत्तम व्यवहार रखतीथी, विमलकुमार भाग्यवान् था, उसके ग्रामान्तर चले जानेपरभी पाटणके प्रत्येक घरमें उसकी कीर्त्तिके गान होरहे थे।

नगर शेठने कन्याके लिये सुन्दर वरकी तलाशका काम एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषीकों सोंपा हुआ था, ज्योतिषीजीने श्रीदेवीके वरके लिये बहुत घड मथल की, परन्तु उसे कोई सुयोग्य वर नजर न आया, श्रीदत्तकों इस बातकी चिन्ता विशेष बाधित करने लगी, ऐसी दशामें ज्योतिषीजीकों वरकी शोधके लिये फिर भी आग्रह किया, तब उन्होंने अनेक अनुभवियोंसे अनेक बातोंका निर्णय करके विमलकुमारको श्रीदेवीका वर कायमकर श्रीदत्तको आकर वधाई दी और कहा कि आपकी आज्ञासे मैं जिसकार्यमें फिरता था आज मेरा प्रयास पूर्णरूपसें सफल हुआ है। श्रीदत्तने उनकी बातपर पूरा ध्यान देकर पूछा वरराज किस खानदानके हैं?। ज्योतिषीजी बोले वीरमंत्रीकी कीर्त्तिको संसारमें कौन नहीं जानता? उस की गैर हाजरीमें उसकी कीर्त्तिको कोटिगुणी अधिकाधिक वढानेवाला विमलकुमार उनका पुत्र संसारमें जयवंता है, उसके रूपपर देवताभी मोहित होते हैं, वह अपने सदाचारसें जगत्के प्रमाणपुरुषोंमें मुकुटसमान होनेवाला है, संसारकी प्रायः सर्व उत्तम कलाएँ उसने अपने नामकी तरह याद कर रखी हैं। उसकी जन्मकुंडली मेरे हाथकी वनी हुई है, आजके संसारमें मैं विमलकुमारकों सर्वोत्तम पुण्यवान मानता हूं, इसी लिये

अगर आप सुवर्णमुद्रिका का अमूल्यमणिके साथ संबन्ध करना चाहते हैं तो इस विचारकों सर्वथा स्थिर कर लेवें, और इस विषयमें जिस किसी सज्जन स्नेहीकी संबंधीकी सम्मति लेंगे आशा है कि वोह सब आपके इस सद्विचारमें बडे आनन्दसें शामिल होंगे, बल्कि आपके इस संकल्पका अनुमोदन करेंगे।

श्रीदत्तने ज्योतिषीजीकी बातकों आदरसें सुना और उसपर घरमें विचारकर जहांतक होसके निश्चय करनेका निर्धारण किया, श्रीदत्तने ज्योतिषिजीका यह कथन अपने घरकी स्त्रीको और चन्द्रकुमारकों सुनाया, उन्होंने तो इसबातके सुनतेही प्रस्तुतकार्यकी बडी प्रशंसा की। जिन जिन निकटवर्ति संबन्धियोंको पूछना जरूरी था, शेठजीने पूछा। एक क्या तमाम लोग एक ही मतसें इस कार्यमें शेठके सहमत हुए।

हमारे वाचक महाशय पढ़ चुके हैं कि एक दफा पाटणमें घोडेसवार होकर जब कुमार बाजारमें जा रहा था तब घोडा उसके वश न रहनेसें कूदकर सामने आते एक स्त्रियोंके टोले तर्फ दौडाथा, इससे वह सब औरते इधर उधर भाग गईथी उस मंडलमें उसदिन श्रीदेवीभी शामिलथी, विमल कुमारके सुंदररूपके देखनेसें वह उसपर रागवती होकर तन्मय बनगइथी, रात और दिन विमलकुमारके ध्यानमेंही तल्लीन रहतीथी, इस चिन्तामें उसका शरीर क्षीण होता जाता था, किसीके साथ खुशीसें बोलना, किसी रमणीक वस्तुकों देखना, रुचिसें भोजन करना, सुन्दर पोशाक पहनना उसे

दिन प्रतिदिन अनिष्ट होता जाता था। वोह रातदिन सच्चे दिलसे विमलकुमारकोंही चाहतीथी, उसकोंही देखती और ढूंढती थी, उसके विना अन्य युवकका नामभी उसे अनिष्ट था।

जब उसे ललिताकी जुबानी यह समाचार मालूम हुआ कि तुमारे लिये यह योजना निश्चित हुई है तो उसने अपने दिलसे अपनी भाभीकों कोटि आशीर्वाद दिये, और उस दिनसें वह अपने मनोरथकों सफल मानकर आनन्दमें दिन गुजारने लगी। श्रीदेवी जैसी एक सुशीला स्त्रीकों विमलकुमार जैसे वरसें युक्त करना विधिका अत्युत्तम कौशल था।

चन्द्रकुमार अपने पिताकी आज्ञाऽनुसार साथमें कुछ स्वजनोंको लेकर विमलके मौसाल गया, और वीरमतिसे अपना आशय प्रकट किया, वीरमति और उसका भाई, दोनों वडे प्रसन्न हुए परन्तु कन्या देखे पीछे निश्चय कहसकेंगे, यह कहकर वीरमतीका भाई पाटण आया, उसने जब श्रीदेवीको देखा तो उसको पूर्ण सन्तोष हुआ, लग्नदिनका निश्चय किया गया, घर जाकर बहिनसें सब बात की। और कहाकि-श्रीदेवी तो खास श्रीदेवीकाही अवतार है, विमलकुमारको ऐसी कन्याका मिलाप यह सुयोग्य संबंध है इसलिये इस विषयमें किसी वातकी न्यूनता नहीं है, विमलके पुण्यसेंही यह उत्तम घटना बनी है, वीरमतीकों वडी खुशी हुई पुत्रका लग्न करना है, पाटणके नगरशेठकी लडकीकों व्याहनें जाना है, आज हमारी जैसी चाहिये वैसी अच्छी स्थिति नहीं है, इन बातोंको

ख्यालमें लाकर वीरमतीका मन संकुचित रहा करता था, परन्तु "भाग्यानि पूर्वतपसा किल संचितानि, काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह वृक्षाः ।"

॥ इच्छितसिद्धि ॥

विमलकुमारके मामा कुछ व्यापारभी करते थे, और कुछ खेतीभी करते थे, विमलकुमार मामाके खेतों तर्फ जा रहाथा, रास्तेमें जाते जाते कहीं पोली जमीन देखकर उसने हाथकी लकडीकों वहां भोंक दिया, लकडी सीधी नीचे न जाकर वांकी होकर नीची चलीगई, विमलकुमारकों संशय पडा तो उसने ऊपरसें कुछ माटी हटा दी, कुछही नीचे खोदनेपर एक चरु धनसे पूर्ण मिल आया उसे लेकर कुमार घर आया उसने वोह चरु अपनी माताकों देकर उसकी प्राप्तिका वृत्तान्त कह सुनाया । वीरपत्नी वीरमती अतिशय प्रसन्न होकर वोली–वेटा ! तूं भाग्यवान् है पुण्यवानोंके लिये सुनाजाता है कि 'पदे पदे निधानानि' मुझे निश्चय होता है कि इस शुभप्रसङ्गपर जो तुझे निधान मिला है, सो इस निमित्तसें अवश्य जाना जाता है कि, श्रीदेवीभी पूर्ण सौभाग्यवती और पुण्यवती है, और इस उत्तम कन्याके घरमे आनेसें तुमारी कीर्त्तिमें वहुत कुछ वृद्धि होगी, वेटा ! जिनराजका धर्म आराधन करना । जिससें तेरे पुण्यकी औरभी पुष्टि होगी ।

पुष्कल धनके मिलनेसें वीरमतीका मन उत्साहित हुआ, उसने भाईके साथ विचार करके विवाहकी कुल सामग्री तयार कराली, लग्नदिनके नजदीक आनेपर वीरमती अपने

भाईके साथ विमलकुमारकों लेकर पाटण आई, भोजन शयन स्थान आदि सर्ववस्तुएँ तयार कराइ गइ, मंडप रचाया गया। शहरके और अन्यस्थलोंके स्वजनसंबंधीलोगोंको आमन्त्रण दिया गया।

उधर नगरशेठके वहांभी सब तरहकी तयारियें होने लगी, राज्यकी मददसें उन्हें जिस जिस वस्तुकी जरूरत थी अनायास मिलगई। निर्धारित शुभदिनमें वडे आडंबरके साथ वर. कन्याका पाणिग्रहण हुआ, नगरशेठने अपनी कन्याकों और जामाताकों अखुट संपत्ति दी, श्रीदेवीने श्वशुरपक्षके सर्व वृद्धोंको नमन किया। सासु वगैरहने हर्षभरे हृदयसे वहुकों अनेक आशीर्वाद दिये, विमलकुमारने इस प्रसंगपर महाराज भीमदेवकोंभी आमत्रण किया, राजा उनके भाग्य सौभाग्यसें उनकी कीहुइ सेवा शुश्रूषासें वडे प्रसन्न हुए, उन्होंने कुछ दिनोंके वाद उनकों एक राज्याधिकारी वनाया, उस अधिकारसें विमलकुमारने वडी प्रशंसा और श्लाघा कमाई। राजाने उन्हे उनके पिताकी जगहपर अपना मंत्री वनालिया, कुमार ज्युं ज्युं ऊंचे अधिकारपर चढने लगा त्युं त्युँ उसमे संसारभरके प्रशंसनीय सद्गुणोंका संचार होने लगा। विमलकुमारके छोटी उमरसें धार्मिक दृढ संस्कार थे, इसलिये इस वाह्य संपत्तिकों वोह धर्म कल्पवृक्षके फल समझकर देवाधिदेव परमात्माकी पूजा, निर्ग्रन्थ साधुमहाराजाओंकी भक्तिसेवा, समानधर्मिलोगोंकी सारसंभालमें एकचित्तसें लगा रहता था, धर्मार्थकाम और मोक्षकों वोह अवाधितपणे आराधन किया

करता था । प्रथम अवस्था–राज्यसन्मान–शरीर सुन्दर–बलिष्ट इन सब विकारी कारणोंके होनेपरभी वोह अपने सदाचारकों मनसें भी नहीं भूलताथा, इसीलिये राज्य और प्रजामें उसका सन्मान प्रतिदिन बढता जाताथा ।

श्रीदेवी जैसी सुरूपा और अच्छे घरानेकी स्त्री मिलनेपर भी विमल कुमारको किसी किसमका गर्व नहींथा, प्रिय पत्नीके साथ वोह जब कभी एकान्तमें बैठकर बात चीत करताथा तब भी वोह इस मनोवांछित सकल सामग्रीके मिलनेमें श्रीजिनशासनकी सेवाकाही फल मानकर उसीही परमात्माका उपकार माना करताथा । श्रीदेवीको योग्य और धर्मिष्ठ वोहभी कई-दिनोंसें प्रार्थित पतिका लाभ होनेसें जो हर्ष था उसकी रूपरेखा कौन चित्रसक्ताथा ? घरके उचित आवश्यकीय कार्योंमें श्रीदेवीकों किसीकी शिक्षाकी जरूरत नहीं पडती थी, वोह स्वतोहि इन कार्योंमें कुशल थी, श्वशुरगृहमें श्रीदेवीने बडा सन्मान पायाथा इसलिये विमलकुमारका भी उसपर अखंड प्रेम था, वीरमतीभी अनेक प्रसंगोमें बहुकी सलाह लेकर काम किया करतीथी, श्रीदेवीकी उमर छोटी होनेपरभी पिताके घरमें मिलीहुई शिक्षा उसके गौरवकों बढा रही थी । जब वोह घरके कामोंसें फ़ारग होती तब सामायिक लेकर धर्मके पुस्तक बाँचकर अपनी सासुकों सुनाया करतीथी ।

इस वक्त पतिके घरका सब भार उसने उठालिया था और प्रत्येक कार्यकों वोह ऐसा नियमित कर लेती थी, कि

किसी काममें जरामात्र भी किसीको कुछ कहनेका अवकाशही नहीं मिलता था, छोटी उमरमें पढेहुए प्रकरण ग्रंथोकों विशेष स्फुट करनेमें अभ्यासक्रमको आगे बढानेमें वह प्रतिज्ञाबद्ध रहतीथी; अपने चातुर्यसे श्रीदेवीने इस घरको देवलोक सा बना दिया था।

॥ सच्चा मंत्री ॥

कुमारको मंत्रीपद मिला तबसें वोह अपना बहुत समय राजसभामेंही निकाला करतेथे, इधर श्रीदेवीकोभी घरका मंत्रीपदही मिलाहुआ था, दोनो दंपती अधिकारपरायण थे, नियमितकार्यके करनेमें विचक्षण थे, संसार और परमार्थके कार्योंमें उन्होंने अग्रपद प्राप्त करलियाथा, अपने जीवनमें जो जो खामी मालूम देती उसे वोह चुन चुनकर निकाल देतेथे और अपने जीवनकों चन्द्रके समान निर्मल बनाये जातेथे।

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।"

इस नियमके अनुसार कुमारकी राज्यमें और प्रजामें स्पर्धासें कीर्त्ति बढने लगी। इधर श्रीदेवीनेभी अपने उत्तम आचार विचारोंसें उभयपक्षकी कीर्त्तिकों दिगन्तगामिनी करना शुरु किया। राजमहेलोंमें राजाओंके अंतेउरोंमें, राणियोंके और राजपुत्रियोंके पास उनकी कीर्त्ति अनेक विश्वासपात्र दासियों द्वारा पहुंचगई। इसलिये वहांभी प्रत्येक शुभप्रसंगोमें उनकी बडी पूछगाछ होनेलगी। श्रीदेवीकी दीहुई सलाह और दर्शाई हुई सम्मति दिव्यवाणी जैसी मानी जानेलगी।

प्रकृति और प्राण मनुष्यके सदा सहचारी होतेहैं, प्राण जावें तो प्रकृति बदले यह कहावत झूठी नहीं है।

दामोदर महता, वल्लभराज और दुर्लभराजके प्रधान मंत्रीथे, उन्हे अपनी बुद्धिका राजतंत्र कौशल्यका पूरा मान था, वोह एक बडे भारी शल्यसें दुःखी रहाकरतेथे, परन्तु उनके उस शल्यकी दवाई कुछ नहींथी, जैनधर्मका उदय उनकों अतीव खटका करताथा।

वीरमंत्रीके दीक्षा लेजानेसें कुछ अरसा वोह शान्त रहेथे परन्तु वीरके पुत्रको अपने पिताके पदपर प्रतिष्ठित और पितासेंभी अधिक सन्मानपात्र देखकर वोह अंदरसें जला करतेथे। महाराज भीमदेवकी माता लक्ष्मीदेवी और लक्ष्मीका भाई संग्रामसिंह जैनधर्मके पूरे सेवकथे, संग्रामसिंहके बडेभाईने और संग्रामसिंहके लडके सूरपालने जैनाचार्योंके पास दीक्षा लीहुइथी।

॥ प्रासंगिक ॥

संग्रामसिंहके बडेभाईका नाम द्रोणाचार्य और सूरपालका नाम सूराचार्य रखागयाथा, यह दोनों मुनिराज आचार्यपद प्रतिष्ठित और महाविद्वान् बुद्धिशाली समयके जानकारथे, भीमदेव उनकों बडे सन्मानकी दृष्टिसे देखा करतेथे, भीमदेवको जैनधर्मपर प्रीति रखनेका एक महान् कारण यहभी था कि वो बाल्यावस्थामें जैनाचार्य जिनेश्वरसूरिजीसे पढे हुएथे, इनकारणोंको लेकर दामोदरका मन शोकातुर रहा करताथा। भीमदेवके पूर्वजोंने आजतक इनका मान रखाथा, येह आद-

मीभी अच्छे समर्थथे, भीमदेवकी जैनधर्मपर वढती जाती आस्ता-को देख इनके मनमें अनेक तरहके विचारजाल गूंथे जारहेथे।

भीमदेवके राज्याभिषेक समय नगरशेठ श्रीदत्तने राज्य-तिलक करनेकी इजाजत मांगी, इजाजत मिली, राज्यतिलक नगरशेठके हाथसे हुआ, यहभी उन्हे सर्वथा अरुचिकर था। वह इसमें यह समझते थे कि वास्तविक रीतिसे सेनापति या मुख्यमंत्रीकोही राज्यतिलक करनेका अधिकार होता है। यह आशय उन्होंने एक दफा सेनापति संग्रामसिंह और मंत्री सा-मन्तसिंहके पास जाहिरभी किया था, संग्रामसिंह मूल मारवाड-देशके वतनीथे, उन्हें अपनी टेकपर रहना बडा पसंद था, हम राजाकी नोकरी करते हैं, राजाने हमकों राज्यरक्षणके लिये आजीविका देकर अपने विश्वासपात्र वनारखा है, हमें उनकी नौकरी वजानेके बदले एक दूसरेके बुरेमें क्यों उतरना चाहिये? येह सोचकर उन्होंने दामोदर महतासें इतनाही कहा—मंत्रीराज! आप दाना हैं, आपकी समझके आगे मेरी बुद्धि तो तुच्छही है तो भी मेरी अर्ज इतनीही है कि राज्यके कामोंमें धार्मिक फिसादोंकों क्यों आगे करना चाहिये?

॥ सिंधपर सवारी ॥

ऊपर "द्रोणाचार्य" वगैरह तीन आचार्योंके नाम लिखे-जा चुकेहै, उनमेसे "सूराचार्य"जीको बुलाकर अपने पंडि-तोसे धर्मवाद करानेके लिये मालवपति धारा नरेशने अपने मंत्रिलोगोंको पाटण भेजा हुआथा, वह मालवमंत्री भीमदेवकी आज्ञा लेकर विदाय हुए. थोडीदेर धारा नरेशकी सभाके

पंडितोंके विषयमें अनेक तरहकी चर्चा हुई, कुछ देरतक और प्रासङ्गिक बातें होती रहीं, भीमदेव-महाराजकी आज्ञासे सभा बरखास्त हुई । महाराज भीमदेव और उनके कुछ खास आदमी सभामें बैठेथे, बाहिरसें छडीदारने आकर प्रार्थना की-महाराज! देशावरोंमें फिरताहुआ एक अपना दूत हजूरके दर्शनोंका उत्कंठित है। भीमदेवने कहा-आनेदो, दूत आया और नमस्कार कर सामने खडा रहा । भीमदेवने उसकी तर्फ देखकर गंभीरतासे पूछा-क्युं क्या खबर है ? कुछ कहना चाहते हो ?। दूतने फिरसे नमन कर हाथ जोड अपने वक्तव्यको कहना शुरु किया, वह बोला-साहिब ! मैं आज एक अनिष्ट जैसा समाचार महाराजाधिराजके चरणोंमें निवेदन करने आया हूं, कहनेको जी नही चाहता तोभी विना कहे सरे ऐसा नहीं ।

सिन्धु और चेदीदेशके राजा आपश्रीकी आज्ञा माननेसे इनकारी हैं, इतनाही नहीं बलिक महाराजा साहिबकी कीर्त्ति-के भी विरोधी हैं। गुजरातके छत्रपति और राज्यरक्षक मंत्रीवरोंकी निन्दाके उन्होंने ग्रन्थ तय्यार कराए हैं। इन राजाओंकी जैसी इच्छा है वैसा इनके पास बल भी है, उस-मेंभी सिन्धु नरेशने तो अन्य कई राजाओंको अपने वश-वर्त्तीभी करलिया है इसलिये अपने लिये बंदरको दारू जैसी घटना बनरही है, आजकल सिन्धुराज बडाही अहंकारमें आरहा है, यह बात मेरे सुननेमें आई कि तुरन्तही आपको खबर देनेके लिये आया हुँ ।

भीमदेवने उक्त समाचारको आद्योपान्त ध्यानपूर्वक सुना उन्होंने क्रोधके आवेशमें आकर संग्रामसिंहकी तर्फ देखा, संग्रामसिंह बडा चतुर था, उसने खडे होकर अरज की, साहिब! महाराजाकी आज्ञा हो तो दोनों राज्योंपर चढाई करनेको सेवक तैय्यार है। राजाने कहा बेशक मेरी इच्छा यही है कि मालवपति चेदीराज और सिन्धुनरेशको अपना हाथ दिखाना जरूरी है मगर बहुत अरसेसे अपने सैनिकोंको युद्धका काम नहीं पडा इस वास्ते तमाम योद्धाओंको कवायदका हुकम देकर प्रथम उनकी परीक्षा करली जाय, अस्त्रशस्त्रादिकी जो जो त्रुटि होवे उसकोभी पूर्णकर लिया जाय, इस कार्यमें अपने नामके अनुसार यशोवाद और सफलता प्राप्त हो सकती है।

राजाकी यह सलाह सबको पसंद आई, तमाम सभासदोंने महाराजकी गंभीरताकों आदरपूर्वक वधालिया और थोडेही समयमें सैनिक योद्धोंके साथ हाथी-घोडे-बैल-ऊंट-शस्त्र-अस्त्र-अन्न-इन्धन-कपडा-लत्ता वगैरह एकठा करलिया गया।

ज्योतिषीके दिये शुभ लग्नमें शुभ शकुनोंसे सूचित आशीर्वचनोंसे उत्साहित राजा भीमदेवने सिन्धाधिपति पर चढाई की।

भीमदेवकी फौज सिन्धदेशके पाटनगरके किनारेपर जा-पडी, सिन्धस्वामी भी अपने फौजी सैनिकोंको साथ लिये श्रावणके वादलकी तरह गर्जता हुआ सामने आ डटा।

दोनो तर्फसे युद्धका प्रारंभ हुआ, चिरकालकी प्रतीक्षित भाटोंकी प्रशस्तियोंके सुश्लोक योद्धाओंके कानोंको सुहावने लगने लगे।

कभी पक्षी और कभी प्रतिपक्षीकी हारजीतके निशान फरकने लगे, आखीर सिन्धपतिके दक्षवीरोंने गौर्जरोंपर अपनी छाया डालनी शुरु की। भीमदेवके सैनिक भागने लगे। ऐसी हालतको देख भीमदेवके चेहरेपर उदासीका प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था।

राजाने "विमल" सेनापतिकी तर्फ देखा, वस कहना ही क्या था? विमलकुमारने अपनी विमलमतिसे अपने स्वामीकी विशद कीर्त्तिको दिगन्तगामिनी करनेके लिये खडे होकर महाराजको प्रणाम किया और अर्जुनके धनुप जैसे अपने धनुपको उठाया। विमलकुमारके धनुपटङ्कारको सुनते ही शत्रुओंका मद क्षीण होकर गौर्जर सैनिकोंका वल असंख्य गुना वढगया। सेनापति अपने अश्वरत्नपर सवार हो अपने कृतज्ञ सेवकोंको साथ लेकर मैदानमें आया।

सिन्धुपतिभी अपने अखर्व अहंकारमें न समाता हुआ अपने ऐरावत जैसे पट्टहाथीको घुमाता हुआ मैदानमें आ पहुंचा। विमलकुमारको अश्वारूढ सामने आये देखकर सिन्धुपतिने अभिमानमें आकर कहा—अरे वाल! क्यों कुमौतसे मरता है? संग्राम करना यह तुमारा वनियोंका काम नहीं, अफसोस है कि अभीतकभी "भीमदेव" अपने पद्मिनीव्रतको लेकर तंबुमें ही छिपा वैठा है!!।

विमलकुमारने कहा, सिन्धुराज! मेरे स्वामी भीमदेवने पद्मिनीव्रत नहीं लिया किन्तु पुरुषोत्तम प्रतिज्ञा ले रखी है, वह अपने समानके क्षत्रियोंसे ही युद्ध करनेमें खुशी हैं!

"कमलोन्मूलनहेतोर्नेतव्यः किं सुरेन्द्रगजः?" मैं मानता हूँ कि अगर त्रिकटु मात्रसे रोगोपशान्ति होजाती हो तो धन्वन्तरीको क्यों बुलाना, मृगारिबालसे ही हरिण भागते हों तो वनराज केशरीकों क्यों उठाना?।

इस आक्षेपकों सुनकर सिन्धुराजके क्रोध और मानकी सीमा न रही, वह दान्तोंके नीचे होठोंको चबाता हुआ सिरपर शमशेरको घुमाता हुआ भबूकता हुआ बोला—विमल! अगर ऐसा है तो आजा सामने। आज तेरे इस अपसारको दूर करनेके लिये यह मेरी तीक्ष्ण तलवार ही महौषध है।

विमलने कहा—अरे क्षणमात्रके सिन्धनायक! ज्यादा बोलनेसे क्या फायदा है? अगर कुछ शक्ति है तो अवसर आया है हुश्यार होकर शस्त्र पकड लो, बाकी तो "नीचो वदति न कुरुते" यह कहावत इसवक्त तुमारेमेही सत्य मालूम दे रही है। बस अपने आपको नीच शब्दसे पुकारा जाता हुआ देखकर सिन्धुपति आगकी तरह लाल होगया और खंजर उठाकर कुमारके सामने दौड आया।

कुमारने एक बाण मारकर शत्रुके मुकुटको उडादिया और दूसरेसे हाथीका मुंह मोडदिया। फौरन ही आप उछल कर राजाके हाथीपर जा चढा और बडी चतुराईके साथ शत्रुकी मुश्कें बांधकर उसे हाथीसे नीचे गिरादिया। पार्श्ववर्त्ति सेवकोने हाथोहाथ उठाकर राजाको अपने लश्करमे पहुंचाया और गुर्जरपतिकी आज्ञासे उसको काष्ठके पिंजरेमे डालदिया। गुर्जरपति आनन्द मनाते हुए गुजरात चले आये। प्रजागणने बडे समारोहसे सन्मान दिया।

इसी प्रकार चेदीराज और मालवपति भोजके साथ संग्राम करके भी विमलकुमारकी सहायतासे प्रस्तुत नरेशको विजय मिली।

॥ पश्चात्ताप ॥

विमलकुमारको राजाकी ओरसे मंत्रीपद मिला हुआ था इस वास्ते पाटणके राज्यमे उनकी वडी पूछथी।

यद्यपि सत्यप्रतिज्ञाशाली और युद्धकुशल देखकर राजाने उनको सेनानायक बनाया था तो भी सदाके लिये वह मंत्रीपदके ही अधिकारी थे, राजा भीमदेव विमलमंत्री पर सर्वथा तुष्ट थे इस वास्ते उनकी दी हुइ सलाहको वडे आदरसे स्वीकारते थे, परन्तु दुर्जन अपना मंत्र फूंके विना कैसे टल सक्ते थे। एक दिन किसी देवीके मन्दिरमे यज्ञ हो रहाथा, उसमे पांच बकरे भी मंगवाये हुए थे, अभी उनके प्राण नष्ट नही किये थे कि—उन जीवोंके भाग्यवशसे विमलकुमार उसदेवीके मन्दिरमे जा पहुंचे। वें वें करते उन अनाथ पशुओंपर उनको दया आई, उन्होने उन ब्राह्मणोंको अर्थात् पुजारियोंको समझा बुझाकर बकरे छुडादिये, अगर कोई नही मानताथा तो उसे जरा धमकी भी दीगई।

दूसरे दिन ब्राह्मणमंत्री, राजगुरु पंडित और अन्यान्य उनके अनुयायी लोगोंका एक मंडल एकत्र होकर सभामे आया, उनमे मुख्य "दामोदर" मंत्री था, जो कि विमलकुमारका सदासे विरोधी था। उन्होने अगली पिछली बातें समझाकर राजाके मनमे यह ठसा दिया कि विमल हमारे धर्मका अपमान करता है, इतनाही नही बल्कि सिंधराजको

जीतेबाद इसने सारी सेनाको बरगिलान कर रखा है, सारी सेना विमलकुमारकी ही आनदानमे है, राजाका तो सिर्फ नाम है।

एक ऐसा भी पत्थर राजाको पकडाया गया कि जिसका नतीजा बडाही भयानक निकले, राजाको यह समझाया गया कि विमलमंत्री जिनदेव और जैन साधुके सिवाय आपको भी सिर नही झुकाता, आपको जब प्रणाम करता है तब हाथकी मुद्रामे अपने इष्टदेवकी मूर्त्ति रखता है और मनमें उसीको नमस्कार करता है आपको तो वह कुछ समझता ही नहीं। इसमें आपको बहुत कुछ सोचनेका है, एक सामान्य आदमीको ज्यादा ऊंचे चढाया जाय तो उससे कभी न कभी वडा नुकसान उठाना पडता है।

स्वार्थपोपक इस कपटी मंडलके वचनोंको सुनतेही राजाका मन क्रोधातुर होगया, राजाने कहा तुमारा कहना ठीक है, विमल वड़ा उद्धत होगया है उसके अखर्व वलसे भावि-कालमे अपने राज्यकी रक्षाकाभी सन्देह है, वल्कि उसको मानहीनके वदले प्राणमुक्त करदेनेतककी मेरी इच्छा होरही है, इसके लिये मैने मेरे मनमे एक मनसूवा कर लिया है जो तुमको सुनाता हुं।

जूनागढके पहाडमेसे पकडे हुए केसरी सिंहको पिंजरेसे निकाल देना और शहरमे यह बात मशहूर कर देनी कि नौकरोंकी गफलतसे यह केसरी छूट गया है, जहांतक यह किसीका नुकसान न करे उससे पहले पहले विमलकुमारको

उसके पकडनेकी आज्ञा करनी, ऐसा करनेसे केसरीके सामने जाके विना मोतके यह मराही समझो, बस "विनौषधं गतो व्याधिः।" अगर भाग्यवशात् इस आपत्तिसेभी यह बचगया तो भीमसेनके समान बलिष्ठ अपने मल्ल (पहलवान) के साथ इसकी कुस्ती करानी, पहलवान एक क्षणभरमे इसकी हड्डियोंको चूर देगा।

फरज करो इस आपत्तिसेभी यह कभी बचगया तो "इनके पूर्वजोंसे ५६ क्रोड टंक प्रमाण राज्यका लेना है इस बातका आरोप देकर इसको पकडके कैद करना और घर बार इसका लूट लेना"।

राजाधिराज गुर्जरपति अपने नित्य भक्त, एकान्त हितचिन्तक सच्चे सेवकवास्ते ऐसा अनुचित विचार करे यह उसके लिये सर्वथा अघटित था परन्तु किया क्या जाय "राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा" "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" यह तो सदाका नियम है, अस्तु केसरी सिंह पिंजरेसे निकालदिया गया, राजाकी आज्ञासे एक हरिण या बकरेकी तरह पुण्याढ्य विमलने उसको पकड लिया।

जिसमल्लको राजा बलिष्ठ समझता था उसे सभासमक्ष विमलने ऐसा पछाडा कि वह मुशकिलसे जान लेके छूटा!।

५६ क्रोड टंक लेनेका और उसके अभावमे विमलको कैद करनेका हुकम होनेपर विमलकुमारने अपनी निर्दोषता और वीरताका परिचय कराते हुए राजाके सामने प्रतिज्ञा की कि,

राजा भीमदेव मेरे स्वामी हैं वह खुद सिंहासनसे उठकर मुझपर निष्प्रयोजनभी वार करेंगे तो मै प्राणान्तमेभी उनके सामने आंख ऊंची न करुंगा, और यदि दूसरा कोई वीर-मानी मुझे कैद करनेकी ताकत रखता हो तो अच्छीतरह सोच विचारकर मेरे सामने आना, मेरे हाथकी तलवार भलेभ-लोंकी गरदनकों धरतीपर गिराकर बडी देरमे जाकर शान्त होगी ।

सत्यकी देवताभी सहायता करते हैं तो मानवोंका तो कहना ही क्या ?

विमलकी इस प्रतिज्ञाको सुनते ही "संग्रामसिंह" दंडनायक (सेनापति) जो कि राजाका मामाभी था प्रत्यक्ष विरोधी हो पडा, इतनाही नहीं बल्कि विमलकुमारकी राजभक्ति, सत्यता, वीरतासे कुछ गिने गांठे मनुष्योंको वर्जके सारा राजमंडल और संपूर्ण प्रजावर्ग भी राजासे विरुद्ध होगया ।

आखीर परिणाम यह हुआ कि राजा भीमदेवकी आ-ज्ञाको मान देकर विमलकुमारको पाटण छोडकर "चन्द्रा-वती" जाना पडा ! ! ।

"यत्रापि तत्रापि गता भवन्तो,
हंसा महीमण्डलमण्डनाय ।
हानिस्तु तेषां हि सरोवराणां,
येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥ १ ॥"

इस घटनाके समय चन्द्रावतीमे "परमार" वंशीय "धन्धु-कराज" राजा राज्य करता था, विमल पाटणसे रवाना हुआ

तव उसके साथ उसका सैन्य मौजूद था। विमलमंत्रीने परमारको समाचार कहलाया कि तुम गुर्जरपतिकी आज्ञाको मान देकर उनकी आज्ञा उठाओ अन्यथा हमसे युद्ध करो।

धन्धुकने आज्ञा माननेसे इन्कार किया। विमलमंत्रीने लडाईमे उसको जीता और अपने स्वामी भीमदेवकी ध्वजा चढाई। धन्धुक परमार मंत्रीके पांओंमे आगिरा और विमलकुमारको अपना स्वामी मानकर उसकी सत्तामे रहने लगा।

विमलकुमारके चले जानेपर पाटणकी प्रजा उसमेभी खास कर जैनजातिके मनपर वडा आघात हुआ।

पाटणके सकल जैनसंघने एकत्र होकर ठहराव किया कि "धार्मिक क्रियाओंकी ईर्ष्याओंके कारण ब्राह्मणोंके वितथ भाषणको सुनकर राजाने अन्याय किया है, अपने सबको चाहिये कि राजासे इस वातकी अरज गुजारें। अगर राजा अपनी भूलको स्वीकार कर विमलकुमारको सर्वथा निर्दोष ठहराकर पीछे बुलानेका फरमान भेजे तो ठीक, नहीं तो अपने सब (आबालवृद्ध) ने पाटणको छोड चन्द्रावती चले जाना।"

॥ एक सूक्ष्मपर्यालोचन ॥

एक खास घटनाका उल्लेख करना रह जाता है मगर यह वात है वडे उपयोगकी, अपने लोगोंमे साधारण कहावत है कि—"कपट वहां चपट" भीमदेवके पास एक उत्तम राजपुत्र रहता था जिसका महाराज वडा मान रखते थे, वल्कि उसको इस गुर्जरपतिके हाथसे "सामन्त" का पद मिला हुआ था।

राजा अपने अंगत कार्योंमे खास उसे पूछा करते थे, और वह अपनी बुद्धिके अनुसार नेकनियतसे अच्छी सलाह दिया करता था इसीलिये वह अपने आपको वडा प्रतिष्ठापात्र राजमान्य मानता था।

दामोदर मंत्री जो विमलकुमारका कट्टर विरोधी था उसके घर उसकी "मैना" नामक युवान कन्या थी, सामन्तने उसे केई दफा देखा था और उसके सर्वाङ्ग सुन्दर रूपपर वह मोहित था इसीहि लिये वह दामोदरके घर केई दफा जाया करता और विमलके विरुद्धकी सलाहोंमे दामोदरमंत्रीकी हां मे हां मिलाया करता था, परन्तु दामोदरकी अन्तरङ्ग लालसा कुछ और ही थी। वह चाहता था कि, इस सुरूपा कन्याको यदि राजा देखे और इसकी याचना करे तो मेरा राजाके साथ एक गाढ संबंध होजानेसे विमलकुमार वगैरह अपने प्रतिपक्षियोंको एक लाठीसे हाँक कर दीन दुनियासे पार कर दूं। इसमे सामन्तकी वह वडी मदद समझते थे परन्तु— "सन्मार्गस्खलनाद्‌ भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि।" जब सामन्तको इस बातका निश्चय हुआ कि "मैना" को दामोदर राजाकी राणी बनाना चाहता है तो सामन्त निरास होगया, आजसे लेकर दामोदरके साथका उसका संबन्ध भी खतम होगया। इतनाही नही बल्कि उस दिनसे सामन्तने दामोदरको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना शुरु करदिया।

विमलकुमारके चन्द्रावती जानेके पीछे जब सामन्तसे राजा भीमदेवकी एकांतमें बातचीत हुई तो सामन्तने दामो-

दरके मनकी कुटिलताका ऐसा अनुभव करा दिया कि त-त्काल राजाकी दामोदरपर अतिशय अप्रीति होगई । साम-न्तने विमलकुमाररूप "कोहिनूर" के खोहे जानेका इस कदर अफसोस मनाया कि सुनकर राजा रो पडा, राजाने पूछा सामन्त! अब क्या करना चाहिये ? । सामन्तने कहा आपने बहुत साहस किया है, बाण हाथसे छूटगया है अब मैं क्या कहुं ? । राजाने कहा जो गई सो गई, विमलकी साची भक्तिकी तर्फ ध्यान देकर अफसोस होता है परन्तु अब क्या करना ? विमलकुमारके साथ और पाटणकी जैनप्रजाके साथ कैसा वर्त्ताव करना ? ।

सामन्तने कहा मेरे ख्यालमे तो यह बैठता है कि— "विमलकुमारके लिये एक सभा बुलाई जाय, जिसमे अपनी तर्फसे हुई हुई उतावलका संक्षेपमे दिग्दर्शन कराकर उनको निर्दोष ठहराकर और चन्द्रावतीका दंडनायक बनाकर पाटण बुलानेका फरमान भेजा जाय, और उनके बदले यहांपर श्रीदत्त शेठको दंडनायक और मोतिशाह शेठको संघपति ब-नाया जाय । इतना करनेपर राज्यकी प्रशंसा होगी, पापका प्रायश्चित्त होगा और जैनप्रजाका मन शान्त होगा ।

यह बात राजाको बिलकुल पसंद आई, उन्होने श्रीदत्त और मोतिशाहको उच्चपद देकर विमलकी कृतज्ञताका परि-चय कराते हुए एक आज्ञापत्र लिखाकर उसपर अपने खुदके दस्तखत कर अपने विश्वासपात्र दो मंत्रियोंको भेजा, उन्होने विमलकुमारके पास जाकर सारा

कर पाटण आनेका अतिशय आग्रह किया, परन्तु उस वक्त वहां वर्धमानसूरि नामक जैनाचार्य पधारे हुए थे, विमलकुमार उनके उपदेशको सुनकर चिरसंचित अपने पापोंके नाश करनेके प्रयत्नमे लग रहा था।

एकदा गुरुमहाराजके मुखारविन्दसे विमलमंत्रिने सुना कि मनुष्य अगर जिन्दगीभर पाप व्यापारोंमे ही लगा रहे, शक्य अनुष्ठानसेंभी धर्माराधनद्वारा परलोकमार्गकों सरल न करे तो उसे अन्त्यसमय बहुत पछताना पडता है, इतनाही नहीं बल्कि नावामें अधिक भार भरनेसें जैसे वोह सागरके तलमें चली जाती है वैसे यह आत्माभी पापके भारसें भारी बनकर नरकादि अधोगतिमें चलाजाता है, विविध विपत्ति जन्ममरण रोगशोकादि अगाधजलसें भरा हुआ यह संसार एक तरहका कुवा है, इसमे पडे हुए निराधार जीवको धर्म रज्जुकाही आधार है, परन्तु परोपकारपरायण आप्तपुरुषके दिखाये उस रज्जुकों दृढतर आलंबन गोचर करना यह तो मनुष्यका अपना ही फरज है, धर्मार्थकाम मोक्षका साधन सेवन परिशीलन परस्पर सापेक्ष और अबाधित होना ही सिद्धिजनक है, अगर एक वस्तुमें तल्लीन होकर मनुष्य दूसरे पुरुषार्थकों भुला दे तो अत्यासक्तिसें प्रारब्ध नष्ट होता हुआ शेप पुरुषार्थोंकी सत्ताका नाशक होकर मनुष्यकों सर्वतो भ्रष्ट कर देता है, इसलिये धर्मके प्रभावसें मिले हुए अर्थकामको सेवन करते हुए मनुष्यकों चाहिये कि सर्व सुखके निदान आदि कारणरूप धर्मसेवनकों न भूल जावे।

हर एक जीवकों सुखकी अभिलाषा है, दुःखकों कोई नही चाहता, परन्तु संसारमें एक ऐसा भयानक स्थान है कि, जहां आंखके पलकारे जितनाभी सुख नहीं। और दुःख इतना है कि, जिसकों कहते देवताओंके सहस्रों वर्ष व्यतीत होजावें परन्तु उन घोर पीडाओंका स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सके। उस रौद्रस्थानका नाम नरक है।

क्षेत्रकी परस्परकी परमाधार्मिक देवोंकी की हुई वेदनाओंकों सहते हुए जीवकों असंख्यवर्ष वीतजाते हैं तव सिर्फ एक भव नरकका खतम होता है, दश बातोंकी तकलीफ वहां हमेशां जारी रहती है।

अत्यन्तशीत १ अत्यन्तगरमी २ अत्यन्तही भूख ३ अत्यन्तही तृषा ४ खुजली वेशुमार ५ सदा परतंत्र ६ ज्वरकी सततपीडा ७ दाहकी क्षणभर शान्ति नही ८ भय ९ और शोक १० सदास्थाई। ऐसी अनिष्टगति कि जिसका नाम सुनकर हृदय घवराता है उत्तम जीवोंकों चाहिये कि, उसकी प्राप्तिके कारणोंसें सर्वथा वचते रहें।

आगमेशीभद्र विमलने हाथ जोडकर पूछा–साहिव! इस अनिष्टगतिमें जीव किस किस कामसें जाते हैं?।

गुरुमहाराजने कहा चार वातें ऐसी है जिनसें जीवकों स्वभ्रके दुःख सहने पडते हैं–

महा आरंभके करनेसें १, महापरिग्रहकी रुचिसें २, मांसाहारके करनेसे ३, और पंचेन्द्रिय जीवका घात करनेसे ४।

विमलराज इस वातकों सुनकर कांप उठे और दुःखित

हृदयसें बोले—कृपालु! इन कामोंका करनेवालाभी इस आपत्तिसें बचसके ऐसा कोई उपाय है?।

गुरु बोले—हां है।

विमलका चित्त हर्षित हुआ, उनका चेहरा टहकने लगा और बोला—कृपालु! मुझ पामरपर कृपा लाकर फरमाओ, मेरे जैसा पापात्मा कैसे पावन हो सक्ता है? क्योंकि मैंने अभिमानके वशसें—लक्ष्मीकी लालसासें अनेक पाप किये हैं, राजव्यापारमें और उसमेंभी दंडनायक (सेनापति) का तो धंदाही पापका है।

गुरु बोले—महाभाग! सुन। संसारमें सभी जीव अज्ञानावस्थामे धर्ममार्गसें विपरीत चलते हुए अन्धसमान हैं, परन्तु ज्ञानचक्षुओंके मिलनेपर तो पापकार्यमें प्रवृत्ति न करनी चाहिये। अगर गृहस्थाश्रमके प्रतिबंधसें राजव्यापारकी परतंत्रतासें अथवा धर्मरक्षा राज्यपालनके वास्ते कोइ हिंसादि कार्य करनाभी पडे तो अन्तःकरणसें डरकर करना उचित है कि, जिससें घोर निकाचित बन्ध न पडे।

अज्ञानवशसें किये पापकर्मोंका पश्चात्ताप करनेसें और जिन चैत्य जिन प्रतिमा आदि उत्तम काममें धन खर्चनेसे जगदुपकारी परमात्माकी एक चित्तसें भक्ति करनेसें गुरुसेवा शास्त्रश्रवण तपश्चर्या दान दया आदि कार्योंमें लक्ष्मीका सद्व्यय करनेसें शासनकी प्रभावना करनेसें जीव पापोंसे मुक्त होता है।

गुरुमहाराजकी तत्त्वरूप धर्म देशनाको सुनकर विम-

लबुद्धि विमलने अंबिका मातांका आराधन करना आरंभ किया अंबिका साक्षात् सामने आई । विमलराजने पंचाङ्ग प्रणाम किया । देवीने कहा मैं तुमपर तुष्टमान हुं यथोचित वर मांगो ।

विमलदेवने कहा—माता! यदि तुम तुष्ट हो तो मुझे जिनचैत्यके बनानेमे उचित सहायता दो । और पुत्रकी भिक्षा दो देवीने कहा तुमारा इतना पुण्य नही कि—तुमको इच्छित दोनो वस्तुएं मिले । एक वस्तु मांगो । मंत्रीने अपनी धर्मपत्निकी अनुमति पूछी तो उसने खुशीसे यह ही सलाह दी कि—जिनमंदिरही कराओ । अंबिका मातासे जगहकी याचना की तो—देवीने कहा बकुल और चंपककी छाया जिस जगह पडती हो वहां की भूमि खोदनेसे बावन ५२ लाख सोनैये निकलेंगे। विमलने उस स्थानको खुदवाया। ठीक उतना ही धन तो निकला परंतु ब्राह्मणोने वडी जिद पकडी। उनका कहना यह था कि, आजतक यह तीर्थ जैनोंके हाथमे नही है, इसलिये हम नई रसम शुरु नही करने देंगे । राजाने अंबिका माताकों पूछा । अंबिकाने कहा इस तीर्थपर चिरकालसे जिन बिम्बोका अस्तित्व है । प्रातःकाल कुंकुमके साथियेवाली जमीनको खोदना वहांसे श्रीऋषभदेव स्वामीकी प्रतिमा निकलेगी । वैसाही हुआ । परंतु फिरभी उन्होने अपना कदाग्रह न छोडा । अब उन्होने यह दुच्चर आगे की कि, मानलिया यह तीर्थ जैनोंकाभी है परंतु इस जमीनपर तो हमारी मालिकी है । हम मुंह मांगा दाम

लेंगे। विमलदेव समर्थभी था, स्वामीभी था, तथापि उसने वीर परमात्माके वचनोंको याद करके शान्ति पकडली। प्रभुका फरमान है कि, जिनचैत्य जहां बनवाना हो वहां की जमीनके मालिकको अच्छी तरह खुश करना। ताकि उसकी दुराशीश अपने कार्यको बिगाडे नही।

विमलने पूछा तुम यह जमीन कैसे देना चाहते हो?।

ब्राह्मणोने कहा "जितनी जगह तुमकों चाहिये उतनीपर सोनहीये बिछाकर दो तो हम प्रसन्न है"।

विमलराजने अनर्गल सोनामोहरें देकर बहुतसी जागा रोकनेका मनसूबा किया, परंतु उन लोगोंने ज्यादा जगह धन लेके देनाभी स्वीकार न किया। विमलशाहने समझा कि प्रासादके लिये तो इतनी भूमि काफी है। अब नाहक इन लोगोंसे वैर वैमनस्य क्यों करना?।

यह सोचकर इतनीही जागामे प्रासादकी नीव डाल दी। परंतु नया उपद्रव यह खडा हुआ कि, दिनभरकी चिनी हुई इमारत रातको गिर जाने लगी।

विमलराजने अंबिकासे उसका हेतु पूछा तो माताने कहा "वालीनाह" नामक देव इस भूमिका स्वामी है उसको फल फूल पकान्नका बलि दो। अगर वह अभक्ष्य चीज मांगे तो तलवार उठाकर उसे डराना। वह भाग जायगा तुमारा सितारा तेज है सामने नही ठहर सकेगा।

अंबिकाके वचनसे बालिनाहका आराधन करके विमलने सामने बुलाया, वालिनाहने मांसमदिरा मांगा। विमलने

कहा मैं जैन श्रावक हुं मांसमदिरा न खाता हुं न खाने-वालेको अच्छा समझता हुं। क्षेत्रपाल वालिनाहने कहा मैं तुमारा कार्य न होने दूंगा। विमलने कहा मेरे कार्यमे विघ्नके करनेवालेकों मैं समूल नष्ट करनेको समर्थ हुं! अगर तुम कुछ वाहु वल रखते हो तो मेरे सामने शस्त्र उठाओ। यह कहकर विमलने अपनी तलवार उठाई। वालिनाह कांपने लगा। हाथ जोडकर वोला—सत्त्ववान्! मैं तुमारा अनु-चर हुं। जैसे आज्ञा करोंगे करनेको तयार हुं। और आजसे आपके कार्यमे विघ्न न करूंगा, मेरे लायक किसीभी कार्यके उपस्थित होते मैं हाजर होनेकी नम्र प्रार्थना करके आपकी आज्ञा चाहता हुं।

विमलराजनेभी शिष्टाचारपूर्वक उस देवको विसर्जन किया। और निर्विघ्नपने उस निर्धारित कार्यको शुरु किया। चैत्यकी समाप्तिकी खबर लानेवालेको वहुत कुछ दान दिया। नगर देशमें वधाइयां वांटी गई। चैत्यके तयार होनेके बाद कारीगरोंको आज्ञा की गई कि अव एक एक टुकडा पाषा-णका कोतरकर निकालनेवालेको एक एक सोनामोहर दी जा-यगी। इस लोभसे उन शिल्पियोंने ऐसी ऐसी कोरणी की कि जो जिह्वाके अगोचर हो। दुनियाका विश्वास है कि—"सूर्यको कोई दीवा नही दिखाता" कहते हैं संसारके सर्व दृश्योंमे जैसे ताजवीवीका रोजा दर्शनीय पदार्थ है वैसे आवुके जैनमंदिर हिंदुस्थानकी कारीगिरीका खजाना है। वल्कि ताजवीवी और आवु दोनोंके देखनेवालोंका अभिप्राय

है कि, ताजबीबीसे केई गुणी बढकर आबुकी कारीगिरि है। वहां काचका काम है और यहां तो पाषाणका काम बहुत बारीक है। इस मंदिरकी कारीगिरी सारे संसारमें प्रसिद्ध है। ऐसा कोईही पाश्चात्य अंग्रेज पाया जायगा कि जो हिन्दुस्थानमे आया हो और आबुके मंदिरोंको न देख गया हो। *

किंचित् परिचयके लिये विमलशाह और–वस्तुपालके बनाये मंदिरोंका आदर्श साथ दाखल किया गया है, विशेषके लिये देखो "विमलचरित्र" संस्कृत, तथा "विमलमंत्रीनो विजय"

"श्रीमान् गौर्जरभीमदेवनृपतेर्धन्यः प्रधानाग्रणीः,
प्राग्वाटान्वयमंडनं सविमलो मंत्रिवरोऽप्यस्पृहः ॥
योऽष्टाशीत्यधिके सहस्रगणिते संवत्सरे वैक्रमे,
प्रासादं समचीकरच्छशिरुचिं श्रीअंबिकादेशतः ॥१॥

* देखो परिशिष्ट नम्बर १।

॥ श्री ॥

महा अमात्य वस्तुपाल तेजपाल ॥

[वंशवर्णन]

पाटणमें "पोरवाड"[1] वंशके लोग चावडा और चौलुक्य राजाओंके कार्यवाहक चिरकालसें अर्थात् विक्रम सं० ८०२ सें राज्यव्यापारमें तत्पर थे।

इस पवित्र और प्रख्यात वंशमें चंडप नामका एक मंत्री हुआ, उसका लडका चंडप्रसाद उसका पुत्र सोम और सोमका लड़का अश्वराज (आसराज) हुआ। सोममंत्री महाराज सिद्धराज जयसिंहका वडा प्रीति और विश्वासपात्र था। अश्वराजभी पिताके अधिकारको सुरक्षित करनेमें वडा कुशल और समर्थ था, इसलिये उस समयके महाराजका उसपर वडा प्रेम और हार्दिक विश्वास था। अश्वराज जैसा राज्य-

१ जैनसप्रदायमे मुख्य तीन वैश्य जाति है ओसवाल (१) पोरवाड़ (२) और श्रीमाली (३) ओसवालोंकी उत्पत्ति जैसे मुख्यवृत्तिसे ओसिया नगरीमें मानी जाती है, वैसे श्रीमाली लोगोंकी उत्पत्ति मारवाड़ राज्यान्तर्गत "श्रीमाल" (भिन्नमाल) नगर माना जाता है परंतु पोरवाड़ वंशकी स्थापना किस गाममें किस साल सवत्मे हुई सो पता नही चलता। परंतु "राणकपुर"के त्रैलोक्यदीपक प्रासादके देखनेसे और आबुके मंदिरोंकी अकलीम कारीगिरी देखनेसे उनकी उदारता और धर्मप्रियताका तो पूरा पूरा अनुभव हो जाता है।

कार्योंमें कुशल था वैसाही धर्मकार्योंमेंभी पूरा निपुण आस्तिक देवगुरुभक्त आचारपरायण था ।

आसराजके समानकालीन आबु इस नामके एक प्रधान मंत्री थे, यह जैनसंघके आधारभूत प्रजावत्सल और राज्यधुराधुरंधर होकर धर्मार्थकामके भी सतत अविरोधी थे ।

जगत्में प्रसिद्ध है कि "जहां पानी होता है वहां गौएं स्वयमेव चली आती हैं" पाटणमें अनेक श्रद्धालु लोगोंकी श्रद्धाके प्रेरे हुए अनेक धर्मोपदेष्टा आचार्य जगत्वत्सल आकर भव्यात्माओंकी धर्मभावनाओंको सफल किया करते थे, आज हरिभद्रसूरि महाराज शहरमें पधारे हैं । उनके आगमनसमय अनेक सन्मानसूचक धर्मोत्सव किये गये हैं। राज्य और प्रजा तर्फसें उनका पूरा सत्कार कियागया है। कुछ दिनोंकी उनकी स्थितिसें पाटणके समस्त समाजपर उन महात्माओंका बडा प्रभाव पडा है ।

क्यों न पडे ? जिन्होंने संसारके उपकारके लिये अपने सकल जीवनको अर्पण कर दिया है । जो शत्रु और मित्रको समान देखकर उपकृत करते हैं, परमार्थसाधनही जिनका सत्यजीवन है, उन दिव्य एवं अलौकिक उत्तम व्यक्तियोंका प्रभाव देव-देवेन्द्र-चक्रवर्त्तियोंपर भी जरूर पडता है तो मनुष्योंकी तो कथाही क्या ? ।

सुबहका वक्त है, समय अत्यन्त शान्त है । सूरिजी महाराजके सहज शान्त और निर्मल हृदयमें अनेक धार्मिक विचारमालाओंका संचालन हो रहा है ।

कुछ थोडेही समयमें आचार्य महाराजकी मनोवृत्ति एक विचारमें गुंथाई, उन्होंने सोचा-जैसे जैसे जीवोंके अच्छे बुरे भाग्य होते हैं वैसीही उनको धर्मसाधनकी सामग्री मिलजाती है। महीमंडलके अधिष्ठाता राजा अथवा उनके परिचारक कार्यवाहक सामन्त सलाहकारक मंत्री धर्मात्मा होते हैं तो हरएक आदमी अपनी इच्छित धर्म्मक्रियाएं खुशीसे करसक्ता है। मछली अपनी आत्मसत्तासेही तरती है तो भी उसे जलकी सहायता अवश्यही उपयुक्त होती है।

सार्वभौम महाराजा भरतचक्रवर्त्तिके समय धर्मीजनोंको धर्मकार्योंमें बडा उत्तेजन मिलता था, इसलिये सर्व प्रजा सदाचारपरायण थी। उनके पीछे सगरआदि प्रजापालोंने और उनके सहानुभूति देनेवाले पदाधिकारियोंने भी जिनशासनकी ध्वजाको खूब फरकाया था। चरम तीर्थङ्कर श्रीमन्महावीर परमात्माके शासनमेंभी श्रेणिकराजा संप्रति नरेश कुमारपाल भूपाल आदि अनेक धर्मी राजाओंने, और अभयकुमार उदयन आम्रभट्ट वाग्भट्ट आदि सत्पुरुषोंने धर्मकीधुराको अच्छीतरह वहन किया है।

वर्त्तमानसमयमें तादृश महानुभाव प्रभावक पुरुषका अभाव होनेसें ठिकाणे ठिकाणे अनार्यलोगोंका साम्राज्य फैलता जाता है, धर्मस्थान नष्ट किये जा रहे हैं, धर्मीजन अनेक आपत्तियोंसे ग्रस्त होते जाते हैं। बल्कि विकराल कलिकाल अपना अतुल प्रभाव जमा रहा है। ऐसे समयमें किसीभी शासनप्रभावक उत्तम पुरुषका होना खास आवश्यक है।

ऐसे वक्तपर यदि किसी पुन्यवानका अवतार न हुआ तो धर्मकी स्थिति, राज्यकी मर्यादा, सदाचार वगैरह समग्र व्यवस्थाएं छिन्नभिन्न हो जावेंगी। वर्त्तमानकालमें ऐसा प्रभावकपुरुष होगा या नहीं?, अगर होगा तो कौन होगा?

"देववाणी."

इस विचारश्रेणिमें आरूढ आचार्यमहाराजके तपोबलसें आकृष्ट कोई शासनदेवी आकाशमें प्रकट होकर बोली

"भगवन्! आपकी इच्छा सफल होगी, शासनका उदय होगा, थोडे समयमें आप जैनधर्मका एकछत्र राज्य देखेंगे। इसी शहरमें आबुमंत्री एक विख्यात पुरुषरत्न हैं, उनकी लडकी कुमारदेवी रत्नप्रसू उत्तम स्त्रीरत्न है, उसका पाणिग्रहण आसराज मंत्रीसें हो तो जगत्का पुनरुद्धार करनेवाले नररत्न पैदा होसक्ते हैं, आप जगत् प्रपंचोंसें पराङ्मुख एक महात्मा हैं तो भी मेरी प्रार्थनासे इतना काम करें कि, व्याख्यान प्रसङ्गपर आएहुए आसराज मंत्रीको मेरा यह कहना सुनाकर कुमारदेवीकी पहचान करादें"।

इतना कहकर तपोलब्धि और ज्ञानगुणसंपन्न गुरुमहाराजको नमस्कार कर शासनदेवी स्वस्थानपर चलीगई।

गुरुमहाराजने आवश्यकादि कार्योंको समाधिपूर्वक समाप्त किया। व्याख्यानके वक्त नगरके सकल श्रद्धालु परिषद्में संमिलित हुए, महिलामंडलमें कुमारदेवी भी उपस्थित थी। गुरुमहाराजने वडी हुशियारी और सावधानीसें आसराजको

कुमारदेवीका परिचय कराया, और रजनीमें देखा, सुना, सर्व वृत्तान्त सुनाया । मंत्रीराज अब आनन्दपूर्ण हृदयमें कुमारदेवीकी प्राप्तिके उपाय चिंतन करने लगे, भाविकालमें मुझे एक अनुपम स्त्रीरत्न प्राप्त होगा । संसारमें स्त्रीस्नेह दृढ-शृङ्खला है, उसमेंभी जगत्‌उद्धारक शासनप्रभावक दिव्य कीर्त्ति और कांतिवाले पुत्ररत्न जिसकी कुक्षिसें पैदा होनेवाले हैं, ऐसी पवित्र सती सुशीला सुरूपा कुमारीपर अश्वराज मोहितहों उससें आश्चर्य ही क्या ? ।

आबुमंत्रीसे इस पवित्र कन्याकी याचना की गई, उन्हों-नेभी यह उत्तम और श्लाघनीय योग होता देखकर खुशीके साथ कुमारदेवीका आसराजसें परिणयन करा दिया, संसारमें सर्वत्र यशोवाद फैला, आसराजका आजन्मसें आराधन किया धर्मकल्पवृक्ष सफल हुआ। देवगुरु धर्मके आराधनसें और पुरुपार्थचतुष्टयसाधनसें इस दंपतीका जीवन सुखमय व्यतीत होने लगा । जिनको अपने भुजाबल और भाग्यबलपर विश्वास होता है उनको स्थानका प्रतिबन्ध बाधक नहीं होता ।

कुछ अरसेके बाद मंत्रीराज स्वजनोंकी सम्मतिसें कुमार-देवीसह पाटणको छोडकर सुहालक गाममें जाकर रहने लगे । वहां कुमारदेवीने मल्लदेव–वस्तुपाल–तेजपाल–इन तीन पुत्रोंको और सात पुत्रियोंको जन्म दिया । बस इनकी इस संततिमेंसे यह वस्तुपाल और तेजपालही अपने चरि-त्रनायक हैं । वस्तुपालकी स्त्रियोंका नाम ललितादेवी और वेजलदेवी था और तेजपालकी स्त्रीका नाम अनुपमादेवी था।

मंत्रीश्वर अश्वराजने बहुत दिनतक अपने कुटुंबका निर्वाह किया। वस्तुपाल तेजपालने मातापिताको वृद्धावस्था-वाले जानकर राज्यकार्यसे सर्वथा मुक्त करदिये, और धर्ममें खूब सहायता दी। आसराजकी और कुमारदेवीकी जीवनदोरी अब समाप्त होगई। इस गाममें उनका अवसान हुआ, लायक पुत्रोंने उनके अन्त्यसमयकों खूब सुधारा, जिससें उनका मरणभी अच्छा समाधिपूर्वक हुआ।

वस्तुपाल तेजपाल मातापिताके वियोगसें सदा उदास रहने लगे, अनेक व्यापारोंमें लगानेपर भी उनका मन किसीभी काममें न लगने लगा। हरएक स्थानमें, हरएक काममें, हरएक समयमें, मातापिताकी मूर्त्तिही उनकी आंखोंके सामने फिरने लगी। इस वियोगजन्य दुःखकों जब वह किसीभी तरह न सहन करसके तब लाचार होकर उनकों वह स्थान छोडनेकी जरूरत पडी। वहांसें निकलकर वोह मांडल[1] गाममें जाकर रहने लगे।

वहांभी उन्होंने खूब प्रसिद्धि और प्रशंसा प्राप्त की। वहांके लोग उनकी वडी इज्जत करने लगे, राज्यकार्योंमें भी उनका अधिकार वडा अच्छा जमा। सत्यवादमें, न्यायमें, बुद्धिकौशलमें, वह हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र, अभयकुमारके अवतार कहलाने लगे, राजदरबारमें उनका सन्मान खूब वढने लगा, देशभरमें उनकी कीर्त्ति वेगसे फैलने लगी। नीच और ऊंच,

---

१ वीरमगामके पास यह गाम आजकल भी इसीही नामसे प्रसिद्ध है।

छोटे और वडे, गरीव और अमीर, सवके साथ वह अच्छी तरहसें वर्तने लगे ।

थोडे समयके वाद ज्योतिष् शास्त्रादि विद्याद्वारा अतीत अनागत वर्त्तमान कालके जानकार नरचन्द्रसूरि वहां पधारे । उन महात्माओंके पधारनेसें सर्व नागरिकोंकों अनहद हर्ष हुआ, विशेपतः वस्तुपाल आदिकों इस महामुनि-राजके समागमसें वडा लाभ यह हुआ कि—उनका मन दुःखसें मुक्त होकर धर्ममें स्थिर होगया ।

नरचन्द्रसूरिजी निमित्त शास्त्रमे वडे प्रवीण थे । उन्होंने उन भाग्यवानोंका भावि महोदय जानकर श्रीसिद्धाचल-जीकी यात्रा करनेका, अर्थात्—श्रीशत्रुञ्जय महातीर्थके संघ निकालनेका उपदेश दिया ।

अमात्य संघ लेकर पालीताणे गये । आचार्य महाराजके सतत परिचयसे उनकी धर्मभावना दिन प्रतिदिन खूव दृढ और उमदा स्थिर होने लगी, साहचर्य अच्छा हो, या वुरा, अपना फल जरूर दिखाता है ।

जव वह लौटकर पीछे आये तव गुर्जरपति वीरधवलने उनको अपने मंत्रीपदपर प्रतिष्ठित कर लिया ।

अनेक इतिहासकारोंका मत है कि—"वनराजके पिता जयशिखरीके मारनेवाले कन्नोजके राजा भूवडने गुजरा-तकी राजधानी—जयशिखरीके मरनेके वाद अपनी लडकी मिल्लणदेवीकी शादीके वक्त उसे उसके दायजेमें देदीथी । मिल्लणदेवी ताजिंदगी गुजरातकी आमदनी खाती

रही, आखीरमे मरकर उसी अपनी पूर्वभवकी इष्ट राजधानीकी अधिष्ठायक देवी हुई। उसने भाविकालमे म्लेच्छोंके आक्रमणसे अपनी गौर्जरप्रजाको बचानेके लिये, वीरधवलसे स्वप्नमे आकर वस्तुपाल तेजपालको मंत्री बनानेका उपदेश किया।

सुकृतसंकीर्त्तन काव्यमें लिखा है कि—"कुमारपाल राजाने अपने राज्यवंशधरोंकी और पूर्वकालमे पुत्रसम पालण की हुइ गुर्जरभूमिकी म्लेच्छोंसे रक्षा करानेके लिये देवभूमिसे आकर वीरधवलको स्वप्न दिया कि—राज्यके बचावके लिये इन भाग्यवानोंको अपने मंत्री बनालो।"

मतलब—इतना तो उभयतः सिद्ध है कि—देवकी सहायतासे वस्तुपाल बन्धुसहित मंत्रीपदपर प्रतिष्ठित हुए।

॥ प्रभाव ॥

"दुष्टस्य शिक्षा शिष्टस्य पालनम्" इस न्यायको आदर देना उन्हे बडा रुचिकर था, वीरधवलके अधिकारियोंमे एक आदमी ऐसा षड्यंत्री था कि—उससे तमाम राजसभा खौफ खाती थी। किसी किसी वक्त वह राजाको भी लाल आंख दिखाकर दबा देता था, उसकी अन्यायवृत्तिको जानकरभी कोइ कुछ नही बोल सक्ता था। परन्तु—"सन्मार्गस्खलनाद्भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि" इस महावाक्यसे उसके सहायकही उसे कष्टग्रस्त करनेकी कोशिश करने लगे। सेनाके मुख्य मुख्य आदमी वस्तुपालके पूर्ण रीतिसे अनुयायी थे, देवताकी सहायतासे यह इस पदपर बैठे थे तो

भला किसकी ताकात थी कि इनकी आज्ञाको न मानता ?, कुछ खास खास राज्य हितचिन्तकोंकी मरजीसे मंत्री वस्तुपालने उसको पकडकर कैद किया, और अन्त्यमे ११०० अशरफियां दंड लेकर छोडदिया ।

इस वनावसें वह वहुत कुछ उछलना कूदना चाहता था परन्तु—"यस्य पुण्यं वलं तस्य" तपते हुए मध्याह्नके सूर्यके सामने नजर टिकानेकी शक्ति किसकी थी ? ।

"शिष्टस्य पालनम्" इस वाक्यको उन्होंने सोमेश्वर भट्टमें चरितार्थ किया था । सोमेश्वर-वीरधवलके गृहस्थगुरु ब्राह्मण थे वस्तुपालतेजपाल राजाके हितचिन्तक—सच्चे सलाहकार, प्रजाके एकान्त हितवत्सल, थे, इसवास्ते सोमेश्वर उनपर फिदा फिदा हुआ हुआ था । थोडेसे अन्तरके धर्मभेदके खटकेकोभी महामंत्रियोंने अपनी मध्यस्थवृत्तिसे दूर कर दिया था । वस सोमेश्वर और दोनो मंत्रियोंने संसारमे त्रिमूर्त्तिरूपको धारण कर लिया था ।

॥ दिग्विजय ॥

वस्तुपालके वाप दादा इसी कामको करते आए थे कि जिसपर आज इनका अधिकार था, इसलिये राज्यके कार्योंको सिर्फ दोही नहीं किन्तु हजार नेत्रोंसे देखनेका हजारों कानोंसे सुननेका उनका फर्ज था ।

जव उन्होने देखा कि खजानेमेही वहुत कमी है तो उनको एक चिन्ता उत्पन्न हुई, उन्होने सोचा कि—"कोष एव महीशानां परमं वलमुच्यते" धनसंपत्तिके लाभका उपाय

सोचकर उन्होंने राजाको कहा प्रभु ! आपके प्रमत्तभावको देख हमेशाके मातहद राजालोग खननी देनेसे इन्कारी होरहे हैं इसलिये एक दफा आपको पृथ्वीदर्शन करनेकी खास प्रार्थना है। राजाके इस वातके स्वीकार करनेपर मंत्रीने फौजको शीघ्रही तय्यार करलिया। अच्छे शुभ मुहूर्त्तमें प्रयाण किया गया। पहले छोटे छोटे राजाओंको वश कर उनसे धन और हाथी घोडे पयादे लेकर सौराष्ट्रपर चढाई की। सर्व कार्योंकी सिद्धिसे सहायक "श्रीशत्रुञ्जय" तीर्थकी यात्रा करके राजाने सौराष्ट्रविजय शुरु किया। सब राजाओंको सर करते हुए आप वणथली[1] पहुंचे। वहांका राजा आपका श्वशुर-(सुसरा) लगता था, पर आज खुद राजा तो वहां मौजूद नहीं था किन्तु उसके सांगण और चामुंड दो लडकेअपनी बहिन वीरधवल राजाकी राणी और वस्तुपाल तेजपालादिके समझानेपरभी अपने अभिमानको न छोडकर सामने लडनेको आए, मंत्रीकी युक्ति और पुन्यप्रबलतासे उनको रणभूमिमे मारकर राजाने उनके भंडारमेंसे दशक्रोड सोनामोहर, १४ सौ उत्तम घोडे और ५ हजार सामान्य घोडे लिये। इसके अलावा उत्तम मणी-माणेक-दिव्य-वस्त्र-दिव्यशस्त्र आदि सामग्री लेकर सांगण और चामुंडके

१ यह गाम जूनागढ से दशमाईलके लगभग है रेल्वेका एक स्टेशन है, मुंबईके रईस दानवीरशेठ देवकरण मूलजी यहाकेही वतनी है. यहां कुछवर्ष पहले श्रीशीतलनाथ स्वामीकी वडी ऊंची प्रतिमा जमीनमे से निकली थी सेठ देवकरण भाईने वडा विशाल मंदिर वनवाकर वह मूर्त्ति उस मंदिरमे स्थापन की है।

लडकोंको वणथलीके राज्यपर बैठाया वहां श्रीवीरपरमात्माका चैत्य बनवाकर उसमे प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराकर एक मास वहां रहकर आप जब आगे बढने लगे तब सर्व तीर्थोंके सिरताज गिरनार तीर्थको देखा, मंत्रीसहित आप गिरनारपर गये, नेमिनाथ प्रभुकी भक्तिपूर्वक पूजा की। वस्तुपालसे तीर्थकी महिमा सुनकर आप बडे प्रसन्न हुए, एक गामभी भेट किया, और चलते २ प्रभासपाटण पहुंचे। सोमेश्वर महादेवके दर्शन कर एकलाख सोनैये भेटकर आप दीवबन्दर पहुंचे, वहां कुमारपालके बनवाये चैत्यको देखकर आनन्द मनाते राजा-मंत्री तलाजे पहुंचे, वहांके राजाने इनको जातिमंत केइ घोडे भेट किये। वहां उनको श्रीशत्रुञ्जय महातीर्थकी आठवीं टूक [1]तालध्वजगिरिके दर्शनोंकाभी अपूर्वलाभ हुआ।

इस तरहकी दिग्यात्रा कर क्रोडों रुपयोंकी संपत्ति लेकर मंत्रीसहित राजा धौलके आये, और सुखसे अपने जीवनको व्यतीत करने लगे।

"एक अनोखी और विकट घटना."

या मतिर्जायते पश्चात्, सा यदि प्रथमं भवेत्।
न विनश्येत्तदा कार्यं, न हसेत् कोऽपि दुर्जनः॥ १॥

मारवाडदेशके जावाल नगरसे समरसिंह चौहान राज्य

---

१ यह तीर्थ पालीताणासे १० कोसके फासलेपर भावनगर स्टेटमें तलाजा नामसे प्रसिद्ध है।

करता था, उसके चार लडके वडे सूरवीर थे। वडेका नाम उदयसिंह था, और उसको पिताने राजगादी दी हुई थी। छोटोंके क्रमवार नाम थे–सामन्तपाल १ अनङ्गपाल २ और त्रिलोकसिंह ३। उदयसिंहकी राजसत्तामें छोटे तीन भाइयोंको आजीविका पूरी न मिलनेसे वह राज्य छोडकर चले गये। और वस्तुपालकी कीर्त्ति सुनकर धोलके आये। वस्तुपालके पूछनेपर उन्होंने अपना सारा हाल सुनादिया।

वस्तुपालने अपने-स्वामी राजाको उनकी मुलाकात कराई और सारा हाल कह सुनाया।

राजाने भोजनसमय उनको साथ वैठाकर भोजन कराया, और पूछा कि कहो तुम कितनी आजीविकासे हमारे पास रह सक्ते हो?।

सामन्तपालने कहा-राजाधिराजकी तर्फसे एक एक भाईको दोदो लाख अशरफियें मिलनेपर हम तावेदार हजूरकी छायामे रहनेको उत्सुक हैं।

राजाने इस वातपर अनादर प्रकट करते हुए कहा दो दो लाख अशरफियें? दो लाख अशरफी किसको कहते हैं? दो लाखके हिसावसे तुम तीनो भाइयोंको ६ लाख सोनामोहर देनी चाहिये तो ख्याल करो कि ६ लाख सोनामोहरोंमे हम कितने सुभटोंको नौकर रख सकते हैं? यह वात असंगत है, तुम खुशीसे रहना चाहो तो योग्य वार्षिकपर रहो, नही तो तुमारी इच्छानुसार अन्य स्थान ढूंढलो। इतना सुनतेही राजकुमार वहांसे चल निकले। वस्तुपाल तेजपालने राजाको

अनेक तरह समझाया कि–स्वामिनाथ! संग्रह कीहुई निर्माल्य वस्तुभी कभी काम देती है तो यह चौहाण राजपुत्र आपके आश्रय आकर आजीविकाके संकोचसे अन्यत्र चले जावें यह राजाधिराज गुर्जरपतिकी विशद कीर्त्तिमे कलङ्क है । इतना कहनेपर भी राजाने उधर लक्ष्य नहीं दिया । वह लोग गुर्जर-सीमाको छोडकर भद्रेश्वर नगरमे राजा भीमसिंहकी सेवामें पहुंचे । भीमसिंह पहलेही वीरधवलका विरोधी था । उसने जब सुना कि–यह राजकुमार वीरधवलका अपमान खाकर आये हैं तो उसने एक एक भाईको चार चार लाखका वर्पासन[1] देकर अपनेपास रखलिया !!!

दैवयोग–वीरधवल और भीमदेवमें लडाई शुरु हुई, लडाईका कारण सिर्फ इतनाही था कि–भीमसिंहके भाटने आकर वीरधवलकी सभामे अपने स्वामीके गीत गाये जिससे वीरधवलको गुस्सा आया । वीरधवलको लडाईमे आए सुनकर जालोरी सुभटोंने कहलाया कि–"तुमने हमारा अपमान किया है इसलिये कल सवेरे हम युद्धभूमिमें उस वैरका बदला लेंगे ! (६) लाख द्रम्म खर्चकर तुमने जो योद्धे तयार किये हों उन्हे खूब सन्नद्धबद्ध कर रखना ।" वीरधवलने उसवक्त भी इस बातको हांसीमें निकाल दिया । दूसरे दिन युद्ध शुरु हुआ, सामन्तपाल और उसके दोनो भाइयोंने गुर्जरपतिके सामन्तोंको मार भगाया । सामने आये हुए वीरधवलके सिरमे भाला मारकर उसकोभी जमीनपर गिरादिया ।

---

१ आजीविका ।

सूर्य अस्त हो चुका था, लडाई बंद होगई। वस्तुपालने कुशलपूर्वक अपने स्वामीको अश्वारूढकर अपने तंबुमे पहुंचाया। रातको उपचार करनेपर राजा नीरोग होगया।

इधर भीमसिंहके सुभटोंमें परस्पर खटपट जागी, इसलिये भीमदेवके मंत्रीजनने उसे यह ही सलाह दी कि–वस्तुपालमंत्री बुद्धिका खजाना है वह किसीभी तरह आपका पराजय करेगा, इतनी सलाह हो रही थी इतनेमें उधरसे खबर मिली कि–वीरधवल तो अच्छा भला चौपटकी बाजी खेल रहा है, यह सुनकर सबको निश्चय हुआ कि इनके पास सर्वप्रकारकी सामग्री पूरी है और हमारे सुभटोंमें फूट है इसवास्ते सुलह करलेनीही अच्छी है।

शरत लिखीगई कि–"भीमसिंह अपने राज्यसे सन्तोष मनालेवें। आजसे लेकर हमारी कचहरीमे अपने दूतको भेजकर अपनी प्रशंसा सुनाकर हमे न सतावें। हमभी इन्हे न सतावेंगे" बस दोनो तर्फके मंत्रिलोगोंके दस्तखत होगये। और वीरधवल सपरिवार गुजरात चला आया। मगर वीरधवलको इस बातकी बडी चोट लगी कि–मैंने अपने शरणमे आये हुए सुभटोंका तिरस्कार क्यों किया? परन्तु उपाय क्या होसकता था? आखीर "गतं न शोचामि" कहकर मंत्रियोंने उनके दुःखको भुला दिया।

पहले कहा जा चुका है कि–भीमसिंहके सुभटोंमें परस्पर कुसंप फैलगया था। उसका परिणाम यह हुआ कि जालोरी सुभटोंकी बेकदरी हुई, बस फिर कहनाही क्या था? "अपमाने न तिष्ठन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः।"

इधर वस्तुपाल तेजपाल इसी ही यत्नमें थे कि—अपना आधा राज्य देकर भी सामन्तपाल वगैरहको भीमसिंहसे पृथक् जरूर करना उनकी आशा सफल हुई, साम—दाम—दण्ड—भेद—जिस किसीभी नीतिसे कार्य सिद्ध होसका उन्होंने किया, आखीर एकदिन उनके उस उद्यमका यह फल आया कि सामन्तपाल आदि ३ ही भाई भीमसिंहको छोडकर वीरधवलके पास आगये, राजाने उनको बडे बडे गाम इनाम दिये। भीमसिंहसे फिर लडाई शुरु हुई, भीमसिंहकी हार हुई। भद्रेश्वरकी फतहमें राजाको ७ क्रोड सोनामोहरें—दशहजार घोडे मिले।

अब चारों ओर वीरधवलकी विजयपताका फरकने लगी, दिशा दिशासे हाथी घोडे गाम मणि माणिक सोना रुपया वगैरहकी भेटें आने लगीं, तमाम राजा वीरधवलकी आज्ञाको मान देने लगे।

गोधरेका राजा धुंधल पहले गुजरातके महीपतियोंको भलीभांति मान देता था, परंतु अब कुछ अरसेसे पराङ्मुख हुआ बैठा था, राजा वीरधवलने उसको परास्त करनेके लिये अपनी फौज देकर तेजपालको भेजा।

धुंधलको क्रोध आया कि यह बकाल वणिक् मुझपर हथियार चलायेगा? मेरा सामना यह करेगा? हुआ भी ऐसाही कि धुंधलके सिंहनादको सुनकर वीरधवलके वीर योद्धे संग्रामके मैदानको छोडकर भाग चले। तेजपालने सायंकाल सबको बुलाकर इनाम बांटा और उन्हे उत्साहित किया।

दूसरे दिन फिर लडाई शुरु हुई, आज तेजपाल और धुंधलका मुकाबला था, तेजपालपर धुंधल एकदम टूट पडा, उस वक्त तो तेजपालने अपना बचाव करलिया, परन्तु आगे निभनी मुशकिल थी, तथापि मंत्रीश्वरका पुण्योदय बलिष्ठ था। उसने गुरुमहाराजके दिये "भक्तामरस्तोत्र" के दो श्लोकोंको आम्नायसहित याद किया।

"अचिन्त्यप्रभावो हि मणिमन्त्रौषधीनाम्।" स्मरणमात्रसेही तेजपालने देखा तो अपने दोनो खंभोंपर बैठे हुए कपर्दियक्ष और अम्बिकामाताके दर्शन हुए, इससे उसको निश्चय होगया कि–मेरा जय होगा। प्रचण्ड पवनसे बादलोंकी तरह धुंधलकी फौज भागगई और तेजपालने उछल कर धुंधलको पकडा। बन्धनोंसे बान्धकर उसे पिञ्जरेमे डालदिया और वहां अपने स्वामीकी आज्ञाको वरता कर १८ क्रोड अशरफियां, चार हजार घोडे, मूढक प्रमाण मोती, दिव्यशस्त्र, अस्त्र, लेकर मन्त्रीश्वर गुजरातको रवाना हुआ, रास्तेमे उन्होंने वडोदामें आदीश्वर प्रभुके मन्दिरका उद्धार कराया। डभोईमे महादेवके मन्दिरमे लाखों रु. भेट दिये, पार्श्वनाथस्वामीका नवा मन्दिर करवाया, नगरका कोट बनवाया–चांपागढ और पावागढपर अनेक जिनमन्दिर बनवाये।

मंत्रीराज अपने स्वामीके आदेशसे इन्तजामके वास्ते

---

१ यह दोनोंशहर वडौदा शहरसे करीबन (२०) कोसके फांसलेपर वडौदासे ईशान कूणमे आजभी इसीही नामसे मशहूर शून्य पडे है, वडौदाके जैन लोग यहा यात्राके लिये जाया करते हैं।

खंभात आये, वहां सद्दीक नामक एक धनाढ्य मदान्ध मनुष्य रहता था, वह बडाही घमंडी था । कभी कभी वह गरीबोंके साथ घोर अन्याय करदिया करता था, तोभी उसे कोई कुछ कह नही सकता था, वह ऐसा तो अभिमानी था कि किसी किसी छोटे मोटे राजाको भी कुछ हिसाबमे नही गिनता था। जो कोई राज्याधिकारी खंभातके अधिकारपर आता था उसको सदीकके पास मिलनेको जाना पडता था।

"भरुच" बन्दरके राजा शंखके साथ उसकी मित्राइथी, वह राजा उसे अपना आत्मबन्धु समझता था।

वस्तुपाल मंत्रीने उसके किये एक अपराधके निर्णयके लिये उसे अपने पास बुलाया, परन्तु उसने अमात्यका और राजा वीरधवलका तिरस्कार करनेमेंभी कसर न की।

मंत्रीने कहलाया कि–"राज्यसत्ता बलीयसी" है, तुमको हमारे पास आकर पूछी हुई बातोंका जवाब देना खास जरूरी है, एक तो अपराध करना और दूसरा राज्यको भी तृणवत् मानना भयंकर दोष है।

सदीकने इन सब बातोंको बडे अनादरसे सुना न सुना करदिया, इतनाही नही बल्कि अपने मित्र शंखके पास मनमानी मंत्रीराजकी शिकायतभी की। शंखकी और वस्तुपालकी आपसमे लडाई मची, जयकी वरमाला वस्तुपालके गलेमेही पडी। धर्मशास्त्रोंका फरमान है कि "यत्र धर्मो जयस्तत्र"

फिल हाल शंखकी हार हुई, उसके खजानेमेसे वस्तुपालको बहुत धन मिला। इस भुजाके टूट जानेपरभी सद्दीकका

मान न गया। उसने वस्तुपालको कहलाया कि तुझे मैं अच्छीतरह जानता हुं, तुंभी मेराही भाई बनिया है, मेरे सुभटोंकी लाल आंख होते ही तेरी नशाबाजी उतर जायगी। इस तरहके उसके बकवादको सुनकर मंत्रीने अपने सैनिकोंको साथ लिया और उसके घरको जा घेरा।

यहभी जानलेना जरूरी है कि—वस्तुपाल अपने पुण्यबलसे बलिष्ठ होकरभी साथमे साधन पूरा रखता था। १८०० सुभट ऐसे सूरवीर इनके अंगकी रक्षा करनेवाले थे कि—जो देवतासेभी यथा तथा पीछे नही हटते थे। १४०० सामान्य रजपूत जो कि—दूसरे दर्जेके योद्धे होकरभी विजयको प्राप्त कर सकते थे। इसके अलावा ५००० नामी घोडे, २००० उत्कृष्ट गतिवाले पवनवेग घोडे, ३०० दूध देनेवाली गौएँ, २००० बलद, हजारों ऊंट और हजारों दूध देनेवाली भैंसे थीं। १०००० तो उनके नौकर चाकर थे। तीनसौ हाथी जो उनको राजाओंकी तर्फसे भेटमे मिले हुए थे। उनका मन्तव्य था कि राज्यकर्मचारी गृहस्थका जीवन पैसेपर निर्भर है, इस वास्ते वह ४ क्रोड अशर्फियें और आठक्रोड मुद्राएँ हमेशह अपनेपास जमा रखते थे।

उनकी मान्यता थी कि "पुण्यं पुण्येन वर्धते" इसीही वास्ते वह दीन दुःखियोंको अपने कुटुंबके समान पालते थे। दीन, दुःखी, आर्त्त, और गुणाधिकोंके उद्धारके लिये वह प्रतिदिन १०००० द्रम्म खर्चा करते थे।

वस अब मंत्रीराजके सुभटोंने सामने आते सदीकके सुभटोंको मारपीट कर भगादिया, और मिथ्याभिमानी सदीकको पकडकर मंत्रीदेवको सोंपा।

वस्तुपालने अपने योद्धाओंको आज्ञा दीकि–अन्यायी मनुष्यकी संपत्ति सर्पको दूधकी तरह स्वपर दोनोंको हानिकारक है, इसवास्ते इसकी कुल संपत्ति लेकर राज दरबारमे दाखल करो। उसके घरकी तलाशी लेने पर ५००० सोनेकी ईंटें, १४०० घोडे, औरभी रत्न मणि माणिक वगैरह चीजें जो सार सार थीं सो राज्यके आधीन की गई और सदीकको इस शरतपर छोडागया कि तुमने आजसे किसी भी गरीवसे अन्याय नही करना, और राज्यका अपमान नही करना।

शंखराजाको जीतकर मंत्रीराज जब खंभात आरहे थे तब उनके आनेके पहले किसी देवीने सिंह पर सवार हो आकाशमे खडी रहकर नगरके लोगोंको कहा था कि–"वस्तुपाल–तेजपाल न्यायके पक्षपाती हैं। धर्मकी मूर्त्ति हैं, दीनोंके बन्धु और प्रौढप्रतापी हैं, इनकी अवगणना किसीने न करनी"।

यह देववाणी नागरिकलोगोंने सुनी, और यह बात फैलती फैलती सर्व भूमंडलमे फैलगई, जिस जिस राजा महाराजा सामन्तमंडलेश्वरने यह दैवी आज्ञाको परंपरासेभी सुना, उसने पुण्याधिक समझकर वस्तुपाल तेजपालको भेट उपहार भेजने शुरु किये। महात्मा भर्तृहरीने सत्य कहदिया है कि–"पुण्यानि पूर्वतपसा किल सञ्चितानि, काले फलन्ति पुरुषस्य यथा हि वृक्षाः॥" दिन प्रतिदिन लक्ष्मीसे–सत्तासे–तेजसे–प्रतापसे–

धरित्रीसे–कोष और कोष्ठागारसे वढते हुए मंत्रीराज धर्मार्थ-कामसे अपने अमूल्य जीवनको सफल और सार्थक करते हुए अन्यान्य कार्योंसे निवृत्ति पाकर धोलके पहुंचे थे कि-पूर्वसंचित शुभकर्मोंके योगसे श्रीनयचन्द्रसूरिजीभी ग्रामानुग्राम विचरते हुए धौलके पधारे ।

॥ गुरूपदेश और सेवाधर्म ॥

मंत्रीराज सपरिवार गुरुसेवामे हाजर हुए । सूरिजीने धर्म देशना देते हुए दान धर्मको खूब पुष्ट किया । सुपात्रदान १ अभयदान २ धर्मोपष्टंभदान ३, इन तीन ही प्रकारोंमें सर्व-प्रकारोंका समावेश करके दानकी कर्त्तव्यताको ऐसे जोशीले शब्दोंमें वर्णन किया कि भिक्षाचरकोभी दान देनेकी रुचि पैदा होजाय । विशेष फल यह आया कि वस्तुपाल तेजपालके मनमे दृढतर यह धारणा होगई कि–"लक्ष्म्याभरणं दानं" यह वचन टंकशाली है, तत्काल ही दोनो भाइयोने उस उपदेशको सफल कर दिखाया ।

जहांपर सदाकाल अन्नपानी दिया जाय ऐसी अनेक दान शालाएँ वनवाई । रसोइयोंको हुकम करदिया कि सर्वजीवात्मा हमको समान है, याचक चाहे कैसी भी हालतमे आवे उसको मुंहमांगी वस्तुएँ खिलाओ । गौ वगैरह चौपदोंको कबूतर वगैरह पक्षियोंको यावत् जलचर–थलचर खेचर आदि सर्वजीवोंको दान दो । मनुष्योंकी विशेष भक्ति करो, कारण कि–मनुष्य जीते रहेंगे तो वह अन्यजीवोंका रक्षण कर सकेंगे । सर्व जीवोंको अन्न शुद्ध करके खिलाओ, पानी छानकर पिलाओ ।

सार्वजनिक दवाखाने खोलकर उसमे धन्वन्तरि जैसे वैद्योंको नियुक्त करदिया गया, बीमारोंकी सारसंभालके लिये कुशलपरिचारक (नौकर) रखे गये, जो रोगियोंको हर तरहसे आराम पहुंचाएँ। रोगियोंके सोनेकी शय्याएं, बिछानेकी तलाइयें, जंगल पिशाबके लिये स्वच्छ मकान, गाय, बैल, घोडे, आदि जानवरोंकी चिकित्साके साधन, उनकी खोराकके योग्य पदार्थ, पशुओंके बैठने उठने फिरनेकी जगहें, उनकी सफाई, वैद्योंकी पूरी आजीविका, नौकरोंको उचित तनखाह और इनाम, दवा खानेके नौकरोंको खासकर यह आज्ञा दीगई थी कि वह अल्प आरंभसे औषधियां तयार करें।

जिन औषधियोंमे जीव पडे हुए हों उनको काममें न लें, प्रत्येक वनस्पतिसे कार्य सिद्ध होय तो साधारणको न काटे, जो काम सूखीसे सरता है उसके लिये हरीको न काटें। अगर सूखीसे नही सरता तो हरिकोभी काटें।

इन सब कार्यकर्त्ताओंके प्रत्येक कार्यपर खुद दोनों भाइयोंकीनिगरानी रहनेसे कार्यवाहक बडी सावधानीसे कार्य करते थे। रोगी लोग घरोंमें वह आराम नही पाते थे कि जो उन्हे जगत् वत्सल वस्तुपालके औषधालयोंमे मिलता था।

॥ सामाजिक टिप्पणियां ॥

जैन शास्त्रोंका फरमान है कि—अन्नके दान[1]से, पानीके दान[2]से, मकानके देने[3]से वस्त्रके देने[4]से, हितकारी मीठा वचन बोलने[5]से, गुणीजनको नमस्कारके करने[6]से, मनद्वारा सबका

भला चाहनेसे, कायासे परोपकार करनेसे, शुभप्रवृत्ति करने करानेसे, शय्या, संथारा, आसन आदिके देनेसे, जीव पुण्यका वन्ध करता है।

मंत्रीराज शरदीकी मौसम आतेही लाखों रुपयोंके कपडे गरीबोंको बांट देते थे। मुनिराजोंको शुद्ध निर्दोष कल्पनीय वस्त्र देनेका तो उनका परम कर्त्तव्य ही था। जहां सुनाजाता कि मनुष्य या पशुओंको पानीकी कुछ तंगी पडती है वहां तत्काल कुए, तालाव खोदाकर प्राणियोंको सुखी करते थे। मंत्रीराजने ऐसे हजारों जलाशय खुदवाये थे, और हजारों ही भागे टूटों की मुरम्मतें करवाई थी। हजारों सरायँ और हजारों धर्मशालाएँ आपने नयी वनवाईथी। आखीर इतना ही कहना वस है कि कलियुगको आपने सत् युगका वेष पहनाकर उसकी शकलको विलकुल वदल दिया था।

॥ कुछ खास बातें ॥

वस्तुपालतेजपालके अनुपमचरितके विषयमे संस्कृतके अनेक ग्रन्थ मौजूद हैं, जैसे कि—कीर्त्तिकौमुदी १ सुकृतसागर २ वसन्तविलास ३ वस्तुपालतेजपालप्रशस्ति ४ वगैरह वगैरह, परन्तु सवमे वडा ग्रन्थ है—जिनहर्षकविकृत "वस्तुपालचरित्र" इस सविस्तर चरित्रका गुजराती भाषान्तरभी श्रीजैनधर्मप्रसारक सभा भावनगरकी तर्फसे छपचुका है।

उपर्युक्त चरित्रग्रंथोंसे और उनके किये कार्योंसे निश्चय होता है कि जैसे चौलुक्यचिन्तामणि महाराज कुमारपाल पक्के जैन धर्मानुयायी थे, वैसे वस्तुपाल तेजपालभी वडे

धर्मचुस्त और क्रियारुचिवंत थे, आप सिर्फ श्रद्धामात्रसे या वचनमात्रसेही जैनधर्मके उपासक नहीं थे, बलकि आपने जैन-धर्मके वास्ते अपने तनमन और धनको कुरबान करदिया था।

आप १२ व्रतधारी शुद्ध श्रावक थे, आपने पंचमी तप, वीस-स्थानकतप, और चतुर्दशी तपको निरतिचार पूरण किया था।

वस्तुपालकी ललितादेवी और सौख्यलता दो स्त्रियें थी। ललितादेवीने नवकार[1] तपकी आराधना की थी। और सौख्य-लता ने नवकार[2] मंत्रका कोटि जाप किया था।

---

१ नवकार मंत्रके ६८ अक्षर हैं उनकी आराधनाकी विधि यह है कि— "नमोअरिहंताणं" इस आद्यपदके सात अक्षर हैं, सो सात अक्षरोंके प्रमा-णमें लगातार सात उपवास करनेसे पहले पदकी आराधना होती है। "नमो सिद्धाणं" इस दूसरे पदके पाच अक्षरोके प्रमाणमें पांच उपवास करनेसे दूसरे पदकी आराधना होती हैं। गर्ज—दो महीने और १६ दिनमे यह तप पूरा होता है, उसमे ६८ उपवास और ८ दिन पारणेके आते हैं। इस ग्रन्थके लिखनेके समय परमोपकारी गुरु महाराज **श्रीमद्वल्लभविजयजी** महाराजकी छत्रछायामे रहकर तपस्वी **श्रीगुणविजयजी** इस तपको कररहे हैं। इसी परम उपकारी की सेवामे रहकर तपस्वीजी गुणविजयजी ने वि. सं. १९७४ के साल राजनगर अमदावादमे सिद्धि तप किया था, इतनाही नही बल्कि इस तपस्वी मुनिने आजतक ६ वार यह तप किया है।

२ आदमी हमेशह टेकपूर्वक कार्य करे तो "टीपे टीपे सरोवर भराय" इस कहावतके अनुसार बहुत कुछ काम करसकता है। जगद्गुरु विजयहीरसूरिजीके पट्टधर आचार्य श्री "विजयसेनसूरिजी" ने साढे तीन क्रोड नवकार गिनेथे। वर्त्तमान कालमे काठियावाडके लखतर गामके रहीस राज्य कारभारी— **फूलचंद** दीवानने राज्यकार्यमेसे थोडी थोडी फुरसद निकालकर नवकार महामंत्रका जाप शुरु रखा। आखीर हिसाब गिननेपर मालूम हुआ कि **फूल-चंद** भाईने अपनीजिन्दगीमें (८१) लाख नवकार गिने हैं।

तेजपालकी स्त्री "अनुपमा देवी" ने नन्दीश्वरतीर्थ तप आदि अनेक तप किये थे। जैनाचार्योंको दूर दूरसे बुलाकर उन्होने उन तपस्याओंके उद्यापन (उजमणे) भी बडे आडंबरसे किये थे।

वस्तुपाल—तेजपालके कराये उजमणोंकी रीति भांतिका वर्णन सुनकर ऑखोंसे आनन्दके आंसु टपकने लगजाते हैं। आपने सिद्धाचल-गिरनार-तारंगाहिल—पावागढ—आबु—सम्मेतशिखर आदि तीर्थोंपर जिनमन्दिर बनवाये थे।

मालवामंडन साचोर नगरमे महावीरदेवकी यात्रामे तेज पाल मंत्रीने लाखों रुपये खर्चे किये थे। इस तीर्थमे जो चरम तीर्थंकरकी प्रतिमा है उसकी प्रतिष्ठा वीरनिर्वाणसे ७० वर्षके बाद रत्नप्रभ सूरिजीने अपने हाथसे कराई है, और अनेक शासनप्रभावक साधु श्रावक यहां आये हैं।

सिद्धाचल गिरनारकी १२ यात्रा आपने बडे बडे संघ निकाल कर की थी। १३ वीं यात्रा करने जा रहे थे कि काठियावाडके लींबडी गामके निकटवर्त्ति "अंकेवाली" गाममें वस्तुपालका स्वर्गारोहण हुआ। कपर्दियक्षके कहनेसे उनके मृतक शरीरका सिद्धाचल पर अग्निसंस्कार किया गया। तेजपाल शंखेश्वर पार्श्वनाथकी यात्रा करने जारहे थे कि रास्तेमे उनका काल होगया प्रबंध ग्रथोंसे पाया जाता है कि तेजपाल शंखेश्वर पार्श्वनाथकी यात्रा करके वापिस आर हेथे कि रास्तेमे उनका अंतकाल होगया।

वस्तुपाल तेजपालने अनेक मुनियोंको सूरिपद दिलाए। आप सालभरमे तीन दफा साधर्मी वात्सल्य किया करते थे।

॥ साहसिक कार्य-और-राजदत्त पारितोषिक ॥

सदीक नामक मिथ्याभिमानीको नमानेसे राजा वीरधवलने चरित्र नायक वस्तुपालको "सदिककुलसंहारी" और उसके मित्र भरुच बंदरके अधिपति शंखनरेशको स्वाधीन करनेसे "शंखमानविमर्दन" यह दो विरुद दिये थे।

नयचंद्रसूरिजी महाराजने उन्हे यह शिक्षा दीथी कि- "बादलकी छायाकी तरह मनुष्यकी माया (संपत्ति) स्थिर नही रहती, इसवास्ते इससे लोकोपकारी काम करके अपने नामको अमर बनालेना, यह तुमारा परम कर्त्तव्य है। तुमारे इस दर्जे पहुंचने परभी तुमारे साधर्मी भाई भूखे मरें, यह आंखोंसे देखा नहीं जासकता। अरे भाग्यवानो! विचारनेका विषय है कि कौआभी अपनी प्राप्तवस्तुको बाँटके खाताहै तो मनुष्यका तो फर्जही है।

सूरिजीका यह उपदेश कैसा समयोचित था? आजके धर्मोपदेशक महापुरुषोंका इस विषयमे दृष्टिपात होना कितने महत्त्वका है? किसी कविने एक सूक्त कहकर इसबातका खूब समर्थन किया है। कवि कहता है—

"अगर बेहतरिये कौमका कुछ दिलमे है अरमान।
हो जाओ मेरे दोस्तो! तुम कौमपर कुर्बान ॥
सोते उठते बैठते तुम कौमकी सेवा करो।
नाम रह जाएगा बाकी वक्त जाएगा गुजर ॥ १ ॥"

इस गुरु महाराजके अकसीर उपदेशको सुनकर मंत्रिपुंगवोंने यह अभिग्रह धारण करलिया कि-"समानधर्मि श्रावक

श्राविकाओंके उद्धारमे हमने प्रतिवर्ष एक क्रोड द्रम्म अवश्य खर्चना, इससे ज्यादातो व्यय करना परन्तु कमती नही" ।

मंत्रीश्वरको इस नियमका पालन करते देखकर सूरिशेखरने "ज्ञातिपालनवराह" का खिताब दिया था ।

॥ तीर्थयात्राका समारोह ॥

एक समय श्रीनयचन्द्रसूरिजीका पत्र आया, मंत्रियोंने उसे गुरुप्रसाद समझकर आदरपूर्वक शिरोधार्य किया, वांचकर सकल कुटुंबको सहर्ष सुनाया ।

पत्र द्वारा सूरिजीमहाराजने यह आज्ञा की थी कि–"आप दोनो ही भाइयोने पहले श्रीसिद्धाचलजीका संघ निकाला उस वक्त आपकी इतनी हैसीयत नही थी, आज आपके पास सर्वप्रकारकी सामग्री है इसलिये यदि तीर्थाधिराजकी यात्राका लाभ लिया जाय तो वहुत हर्षका कारण है" ।

इस पत्रको वांचकर अखिल मंत्रिकुटुंबने जो हर्ष मनाया था उसको ज्ञानीविना कौन कह सकताथा ।

---

१ हर्षका समय है कि जैन जातिमे आजभी ऐसे ऐसे उदार गृहस्थ संसारका उपकार और उद्धार कर रहे हैं । मुंबईके प्रसिद्ध और प्रख्यात जैन व्यापारी–प्रेमचंद–रायचंद–को कुल दुनिया जानती है वल्कि अंग्रेज लोग तो प्रेमचंदको "व्यापारी शहेनशाह" के उपनामसे वुलाते थे, उस प्रेमचंद रायचंदने अपनी जिन्दगीमें ६० लाख रुपया परोपकारके कार्योंमे लगाकर श्रीजिनशासनकी ध्वजा फरकाई थी ।

{ देखो सनातन जैनपु. २–अंक ३–सं. १९०६ ।
{ और राजाशिवप्रसादसितारे हिन्दके ग्रन्थ ।

उत्तरमें निवेदन किया गया कि—"आपके चरणोपासक आपश्रीजीकी आज्ञा पालन करनेको तयार हैं आप शीघ्र पधारें, आपश्रीजीके वगैर हम कुछ नही कर सक्ते, मुहूर्त्तका निर्णय आपश्रीजीके पधारने पर ही होगा"

करुणासागर सूरिजी चिट्ठी वांचकर तुरतही धोलके पधारे, मुहूर्त्तका निश्चय करके देशदेशान्तर पत्र लिखेगये, लाखों मनुष्य इकट्ठे हुए।

शुभलग्नमें श्रीसंघ रवाना हुआ। संघमे नागेन्द्रगच्छके आचार्य विजयसेनसूरिजीने आगे होकर सर्व क्रिया कराई। सूरिमंत्रके स्मरणपूर्वक संघपतियोंके मस्तक पर वास-क्षेप किया।

संघमे ३६००० मुख्य श्रावक थे, उनको सोनेके तिलक दियेगये। नयचन्द्रसूरिजीकी देशनासे श्रीसंघका उत्साह और भी वढा।

श्रीसंघके पडाव हलके और अनुकूल रखेगये। संघमें हाथी दान्तके २४ रथ मौजूद थे। २००० लकडेके रथ थे। ५०००० गाडे थे। १८०० घोडागाडियें थीं।

जो जो संघपति साथमे थे, जिन्होने पहले संघ काढे हुए थे उनके मस्तक पर छत्र धारण किये जाते थे। ऐसे छत्रपति संघवियोंकी संख्या १९०० थी।

तीन हजार ३००० ऐसे मनुष्य थे कि जिनको चामर

किये जाते थे। येह चामर किसीको राजाकी तर्फसे और किसीको श्रीसंघकी तर्फसे मिले हुए थे।

४५०५ पालकियां थीं। १८०० सामान्य गाडियां थीं। २२०० तपस्विसाधु साथमे थे। ११०० दिगंबर साधु थे। ४०८ वडे रथ थे जिनको घोडे खींचतेथे। ३३० रथ ऐसे थे जिनको वैल खींचते थे। १८०० सुखासन थे।

सव मिलाकर सात लाख मनुष्य थे। ३०३ मागध थे। ४००० घोडे थे। हजारों तंबु थे। सवके मध्यभागमे देव-विमानके समान वस्तुपाल तेजपालका तंबु था। तोरण स-हित ७०० देवालय थे।

विशेष अलौकिक घटना यह थी कि श्रीसंघके आगे सिंह पर सवार होकर अंविका माता चलती थी। उन्हींके साथ हाथीकी सवारी पर चढे हुए कपर्दी यक्ष चलते थे। याचक लोग चारो तर्फसे—"सरस्वतीकंठाभरण १ षट्दर्शनकल्प-तरु २ औचित्यचिन्तामणि ३ संघपति ४ कविचक्रवर्त्ती ५ अर्हद्धर्म-धुरन्धर ६ भोजकल्प ७ समस्तचैत्योद्धारक ८ दान-वीर ९ कलिकालवलनिवारक १० जिनाज्ञापालक ११ इत्यादि विरुदावलियोसें आकाश गुंजा रहे थे।

इस अलौकिक समारोहके साथ महामात्यने आनन्दाद्वैतसे सिद्धक्षेत्र और गिरनारतीर्थकी यात्रा करके अपने सम्यक्त्व रत्नको विशद वनाया और लाखों भव्यात्माओंको वोधिवीजका दान दिया।

॥ अनन्य संपत् ॥

संघ लेकरके मंत्री जब सोरठकी तर्फ जा रहे थे रास्तेमे वढवाण शहर आया, वहां अनेकगुणसंपन्न "रत्नशेठ" नामक शाहुकार था, उसके पास दक्षिणावर्त्त शंख था। संघपति वस्तुपालके आनेसे कुछ दिन पहले दक्षिणावर्त्तके अधिष्ठायकने अपने स्वामी रत्नशेठको कहा कि—"मै सात पीढियांसे आपके घर रहता हुं, अब वस्तुपालका भाग्य सितारा तेज है, मैभी उसी ही पुण्याढ्यकी सेवा करूंगा, इसलिये तुम संघपतिको आदर पूर्वक घर बुलाना और सत्कार सन्मान पूर्वक भोजन कराकर भेटमे यह शंख उनको दे देना" रत्नशेठ बडा संतोषी था, उसने वैसाही किया और संसारमें अपूर्व यश प्राप्त करलिया।

वस्तुपाल बड़े विचारशील थे, उनकी बुद्धि शास्त्रसे परिष्कृत थी, उनके मनमे यही कामना रहती थी कि किसी तरहसे भी अपने स्वामीके मनको धर्मसे जोडाजाय तो अच्छा हो। उनका वह मनोरथ सफल हुआ, राजा वीरधवलने मद्य १ मांस २ और पर्वदिनोंमे रात्रीभोजन ३ का त्याग करदिया।

विशेष आनन्दकी बात यह कि—उस राजाधिराजने सर्व पापोंके सरदार "परस्त्रीगमन" रूप घोर पापकोंभी छोड दिया।

॥ मूल विषय ॥

अभीतक जो कुछ कहा गया है वह सब वस्तुपाल तेजपालके संबंधमे कहागया है, परन्तु हमारा असली वक्तव्य तो

आवुके जैनमन्दिरोंसे है। जिसमे विमलमंत्रीका और उनके बनवाए आदीश्वरजीके मन्दिरका वर्णन होचुका है। अब प्रसंगोपात्त वस्तुपाल तेजपालका संक्षिप्त जीवन कहके उनके कराए श्रीनेमिचैत्यका वर्णन करना आवश्यक है।

श्रीनरचन्द्रसूरिने जब देखा कि उत्तर बंगालसे लेकर दक्षिण सागर तट तकके सर्व उत्तमस्थानोंका इन भाग्यवानोंने उद्धार कराके उन सबको तो ठीक ठीक रोशन किया है, अब सिर्फ एक आवुतीर्थ ही बाकी रहगया है कि जिसपर इन भाग्यवानोंने अभीतक कोई देवस्थान नही बनवाया, और बनवाना जरूरीभी है, क्योंकि अर्बुदाचल (आवुपर्वत) भी कैलाशका लघु बान्धव है। यह सोचकर उन्होने मंत्रिवर्योंके आगे आवुपर्वतका माहात्म्य कहना आरंभ किया।

वस्तुपाल तेजपालने खुद वहां जाकर मौका देखा, आवुकी तलाटीपर बसी हुई चन्द्रावती नगरीके राजाने उनकी बडी इज्जत की, और सहायता दी। इस पर उन्होने वहां मन्दिर बनवाने शुरु किये। शोभन नामका एक मिस्तरी बडा कार्य कुशल उसवक्तका उत्तमोत्तम आल्हादजैंका सूत्रधार गिनाजाता था, उसको मन्दिर बनवानेका काम सौंपागया। उसने २००० आदमियोंको अपने हाथ नीचे रखकर श्रीनेमिचैत्यको तयार किया। वि. संवत् १२८४ फाल्गुन मासमें इस चैत्यकी प्रतिष्ठा हुई। विशेष हाल वस्तुपाल चरित्रसे जाननेकी स्मृति दिलाकर इस निबन्धको समाप्त किया जाता है[1]॥

॥ श्रीरस्तु ॥

---

१ कुछ संक्षिप्त हाल परिशिष्ट नं. १–२ से जाना जा सकता है।

परिशिष्ट—नम्बर १.

देलवाडा—अर्बुदादेवीसे करीव एक माइल उत्तर—पूर्वमें देलवाडा नामक गांव है ॥ जो देवालयोंके लिये ही प्रसिद्ध है. यहांके मन्दिरोंमेंसे आदिनाथ और नेमिनाथके जैन-मन्दिर कारीगरीकी उत्तमताकेलिये संसारभरमें अनुपम हैं. ये दोनों मन्दिर संगमर्मरके बने हुए हैं. इनमेंभी पुराना और कारीगरीकी दृष्टिसे कुछ अधिक सुन्दर विमलशाह नामक पोरवाड महाजनका बनाया हुआ विमलवसही नामका आदिनाथका जैनमन्दिर है. जो वि० सं. १०८८ ई. स. १०३१। में समाप्त हुआ था. इसमें करोडों रुपये लगेहोंगे. आबूपर परमार वंशका राजा धंधुक उस समय राज्य करता था. वह गुजरातके सोलंकी राजा भीमदेवका सामंतहो, ऐसा अनुमान होता है. उसके और भीमदेवके बीच अनबन होजाने पर वह मालवाके परमार राजा भोजदेवके पास चला गया जो उस समय प्रसिद्ध चित्तौडके किले (मेवाडमें) पर रहता था. भीमदेवने विमलशाहको अपनी तरफसे दंडनायक (सेनापति) नियत कर आबूपर भेजदिया—जिसने अपनी बुद्धिमानीसे धंधुकको चित्तौडसे बुलाया और उसीके द्वारा भीमदेवको प्रसन्न करवा दिया. फिर धंधुकसे जमीन लेकर उसने यह मन्दिर बनवाया. इसमें मुख्य मन्दिरके सामने विशाल सभामंडप है और चारोंतरफ छोटे २ कई एक जिनालय हैं. इस मन्दिरमें मुख्य मूर्ति ऋषभदेव (आदिनाथ)

की है जिसकी दोनों तरफ एक एक खडी हुई मूर्ति है. और भी यहांपर पीतल तथा पाषाणकी मूर्तियां हैं जो सब पीछेकी बनीहुई हैं. मुख्य मन्दिरके चौतरफके छोटे २ जिनालयोंमें अलग २ समयपर अलग २ लोगोंनें मूर्तियां स्थापित कीथीं ऐसा उनपरके लेखोंसे पाया जाता है. मंदिरके सन्मुख हस्तिशाला बनी है जिसमें दरवाजेके सामने विमलशाहकी अश्वारूढ पत्थरकी मूर्ति है,[1] जिसपर चूनेकी घुटाई होनेसे उसमें बहुतही भद्दापन आगया है. विमलशाहके सिरपर गोल मुकुट है. और घोडेके पास एक पुरुष लकडीका बना हुआ छत्रलिये हुए खडा है. हस्तिशालामें पत्थरके बने हुए दस हाथी हैं जिनमेंसे ६ वि० सं० १२०५ (ई० स० ११४९) फाल्गुन सुदि १० के दिन नेठक् आनन्दक् पृथ्वीपाल धीरक् लहरक् और मीनक् नामक पुरुषोंने बनवाकर यहां रखे थे जिन सबको महामात्य (बडेमन्त्री) लिखा है. बाकीके हाथियोंमेंसे एक पंवार (परमार) ठाकुर जगदेवने और दूसरा महामात्य धनपालने वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०) आषाढ सुदि ८ को बनवाया था. एक हाथीके लेखके ऊपर चूना लगजानेसे वह पढा नहीं जा सका और एक महामात्य धवलकने बनवाया था जिस-

---

१ हमारी रायमें विमलशाहकी यह मूर्ति मन्दिरके साथकी बनीहुई नहीं किन्तु पीछेकी बनी हुई होनी चाहिये क्योंकि यदि उस समयकी बनी हुई होती तो वह ऐसी भद्दी कभी न होती। हस्तिशालाभी पीछेसे बनाई गई हो ऐसा पाया जाता है, क्योंकि वह संगमर्मरकी बनी हुई नहीं है और न उसमें खुदाईका काम है उसके अन्दरके सब हाथीभी पीछेके ही बने हुए हैं।

परका संवत्का अङ्क चूनेके नीचे आगया है. इन सब हाथियोंपर पहिले मूर्तियां बनी हुई थीं परन्तु इसवक्त उनमेंसे केवल तीन परही हैं जो चतुर्भुज हैं. हस्तिशालाके बाहर परमारोंसे आबूका राज्य छीननेवाले चौहान महाराव लुंडा लुंभा के दो लेख हैं जिनमेंसे एक वि० सं० १३७२ (ई० स० १३१६) चैत्रवदि ८ और दूसरा वि० सं० १३७३ (ई० स० १३१७) चैत्रवदि······का है. इस अनुपम मन्दिरका कुछ हिस्सा मुसल्मानोंने तोड डाला था जिससे वि० सं० १३७८ (ई० स० १३२१) में लल्ल और बीजड नामक दो साहूकारोंने चौहान महाराव तेजासिंहके राज्य समय इसका जीर्णोद्धार करवाया और ऋषभदेवकी मूर्ति स्थापित की ऐसा लेख आदिसे पाया जाता है।[1] यहांपर एक लेख वघेल (सोलंकी) राजा सारंग देवके समयका वि० सं० १३५० (ई० स० १२९४) माघ सुदि १ का एक दीवारमें लगा हुआ है. इस मन्दिरकी कारीगरीकी जितनी प्रशंसा की जावे थोडी है. स्तंभ, तोरण, गुंबज छत, दरवाजे आदि पर जहां देखा जावे वहीं कारीगरीकी सीमा पाई जाती है. राजपूतानाके प्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल टॉड साहब जो आबुपर चढ़नेवाले पहिलेही यूरोपिअन थे इस मन्दिरके विषयमें लि-

---

१ जिनप्रभसूरिने अपनी 'तीर्थकल्प' नामक पुस्तकमें लिखा है कि, म्लेच्छों (मुसल्मानों) ने इन दोनों (विमलशाह और तेजपालके) मंदिरोंको तोड डाला जिसपर शक संवत् १२४३ (वि. सं. १३७८=ईसवी सन् (१३२१) में पहिलेका उद्धार महणसिंहके पुत्र लल्लने करवाया और चण्डसिंहके पुत्र पीथड़ने दूसरे (तेजपालके) मंदिरका उद्धार करवाया.

खते हैं कि हिन्दुस्तान भरमें यह मन्दिर सर्वोत्तम है और ताजमहलके सिवाय कोई दूसरा स्थान इसकी समानता नहीं करसकता इसके पासही लूणवसही नामक नेमिनाथका मन्दिर है जिसको लोग वस्तुपाल तेजपाल[1]का मन्दिर कहते हैं, यह मन्दिर प्रसिद्ध मन्त्री वस्तुपालके छोटे भाई तेजपालने अपने पुत्र लूणसिंह तथा अपनी स्त्री अनुपम देवीके कल्याणके निमित्त करोडों रुपये लगाकर वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३१)[2] में बनवाया था. यही एक दूसरा मन्दिर है जो कारीगरीमें उपरोक्त विमलशाहके मन्दिरकी समता करसकता है इसके विषयमें भारतीय शिल्प सम्बन्ध विषयोंके प्रसिद्ध लेखक फर्गसन साहबने अपनी पिकचरस इलस्टेशन्स आफ एन्शयंट आर्किटेक्चर इन् हिन्दुस्तान नामकी पुस्तकमें लिखा है कि इस मन्दिरमें जो संगमर्मरका बना हुआ है अत्यन्त परिश्रम सहन करनेवाली हिन्दुओंकी टांकीसे फीते जैसी बारीकीके साथ ऐसी मनोहर आकृतियां बनाई गई हैं कि उनकी नकल कागजपर बनानेको कितनेही समय तथा परिश्रमसेभी मैं शक्तिवान् नहीं हो सकता यहांके गुंबजकी कारी-

---

१ वस्तुपाल और उसका भाई तेजपाल—गुजरातकी राजधानी अणहिलवाडे (पाटण) के रहनेवाले महाजन अश्वराज (आसराज) के पुत्र और गुजरातके धोलका प्रदेशके सोलंकी (वघेल) राणा वीरधवलके मंत्री थे, जैन धर्मस्थानोंके निमित्त उनके समान द्रव्य खर्च करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं हुआ.

२ यहांके शिलालेखमें वि० सं० १२८७ दियाहै परन्तु तीर्थ कल्पमें १२८८ लिखा है.

गरीके विषयमें कर्नल टाड साहिब लिखते हैं कि इसका चित्र तय्यार करनेमें लेखिनी थक जाती है और अत्यन्त परिश्रम-करनेवाले चित्रकारकी कलमकोभी महान् श्रम पडेगा. गुजरातके प्रसिद्ध इतिहास रासमालाके कर्ता फार्बस साहबने विमलशाह और वस्तुपाल तेजपालके मन्दिरोंके विषयमें लिखा है कि इन मन्दिरोंकी खुदाइके काममें स्वाभाविक निर्जीव पदार्थोंके चित्र बनाये है इतनाही नहीं किन्तु सांसारिक जीवनके दृश्य व्यौपार तथा नौकाशास्त्रसम्बन्धी विषय एवं रण खेतके युद्धोंके चित्रभी खुदे हुए हैं। इन मन्दिरोंकी छत्तोंमें जैनधर्मकी अनेक कथाओंके चित्रभी खुदे हुए हैं यह मन्दिरभी विमलशाहके मन्दिरकीसी बनावटका है इसमें मुख्य मन्दिर उसके आगे गुंबजदार सभामंडप और उनके अगलबगलपर छोटे २ जिनालय तथा पीछेकी ओर हस्तिशाला है। इस मन्दिरमें मुख्यमूर्ति नेमिनाथकी हैं और छोटे २ जिनालयोंमें अनेक मूर्तियां हैं। यहांपर दो बडे बडे शिलालेख हैं,। जिनमेंसे एक धोलकाके राणा वीरधवलके पुरोहित तथा कीर्तिकौमुदी सुरथोत्सव आदिकाव्योंके रचयिता प्रसिद्ध कवि सोमेश्वरका रचाहुआ है। उसमें वस्तुपाल

---

१ कर्नल टॉड साहबके विलायत पहुंचनेके पीछे मिसिज विलियम हंटर ब्लैर नामकी एक मैमने अपना तय्यार किया हुआ वस्तुपाल तेजपालके मंदिरके गुंबजका चित्र टॉड साहबको दिया, जिसपर उनको इतना हर्ष हुआ और उस मैम साहबाकी इतनी कदर की, कि उन्होने 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इन्डिया' नामक पुस्तक उसीको अर्पण करदी, और उसे कहा कि 'तुम आबू गई इतना ही नहीं, किन्तु आबूको इङ्गलैंडमें ले आई हो,' और वही सुन्दर चित्र उन्होंने अपनी उक्त पुस्तकके प्रारभमे दिया है.

तेजपालके वंशका वर्णन अर्णोराजसे लगाकर वीरधवल-तककी वघेलराणाओंकी नामावली आबु तथा यहांके परमार राजाओंका वृत्तान्त इस मन्दिरकी प्रशंसा तथा हस्तिशालाका वर्णन आदि हैं। यह (७४) श्लोकोंका एक छोटासा सुन्दर काव्य है.

इसीके पासके दूसरे शिलालेखमें जो बहुधा गद्यमें लिखा है विशेपकर इस मन्दिरके वार्षिकोत्सव आदिकी जो व्यवस्था कीगई थी उसका वर्णन है। इसमें आबूपरके तथा उसके नीचेके अनेक गांवोंके नाम लिखे गये हैं-जहांके महाजनोंने प्रतिवर्ष नियत दिनोंपर यहां उत्सव करना स्वीकार किया था और इसीसे सिरोही राज्यकी उस समयकी उन्नत दशाका बहुत कुछ परिचय मिलता है.

इन लेखोंके अतिरिक्त छोटे २ जिनालयोंमेंसे बहुधा प्रत्येकके द्वारपरभी सुन्दर लेख खुदेहुए हैं. इस मन्दिरको बनवाकर तेजपालने अपना नाम अमर किया इतनाही नहीं किन्तु उसने अपने कुटुंबके अनेक स्त्रीपुरुषोंके नामभी अमर कर दिये। क्योंकि जो छोटे ५२ जिनालय यहांपर बने हैं उनके द्वारपर उसने अपने सम्बन्धियोंके नामके सुन्दर लेख खुदवा दिये हैं प्रत्येक छोटा जिनालय उनमेंसे किसीनकिसीके निमित्त बनवाया गयाथा। मुख्य मन्दिरके द्वारकी दोनों ओर बडी कारीगरीसे बनेहुए दो ताक हैं जिनको लोग देराणी जेठाणीके आलिये कहते हैं और ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि इनमेंसे एक वस्तुपालकी स्त्रीने तथा दूसरा तेजपालकी स्त्रीने

अपने अपने खर्चसे बनवाया था और महाराज शांतिविजयकी बनाईहुई जैनतीर्थ गाइड नामक पुस्तकमेंभी ऐसाही लिखा है जो स्वीकार करने योग्य नहीं है। क्योंकि ये दोनोंआले (ताक) वस्तुपालने अपनी दूसरी स्त्री सुहडादेवीके श्रेयके निमित्त बनवाये थे। सुहडादेवी पत्तन (पाटन)के रहनेवाले मोढ जातिके महाजन ठाकुर (ठक्कुर) जाल्हणके पुत्र ठक्कुर आसाकी पुत्री थी ऐसा उनपर खुदेहुए लेखोंसे पाया जाता है। इस समय गुजरातमें पोरवाड और मोढ जातिके महाजनोंमें परस्पर विवाह नहीं होता परन्तु इन *लेखोंसे पाया जाता है कि उस समय उनमें परस्पर विवाह होताथा.

इस मन्दिरकी हस्तिशालामें बडी कारीगरीसे बनाई हुई संगमर्मरकी १० हथनियां एक पंक्तिमें खडी हैं जिनपर चंडप, चंडप्रसाद, सोमसिंह, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तु-

---

* इन दोनो ताकोंपर एकही आशयके (मूर्तियोंके नाम अलग अलग होंगे) लेख खुदेहुए हैं, जिनमेसे एककी नकल नीचे लिखी जाती हैः—

ॐ संवत् १२९० वर्षे वैशाख वदि १४ गुरौ प्राग्वाट ज्ञातीय चण्डप चण्डप्रसाद महं श्री सोमान्वये महं श्री आसराजसुत महं श्रीतेजःपालेन श्रीमत्पत्तनवास्तव्यमोढज्ञातीय ठ. जाल्हणसुत ठ. आससुतायाः ठकुराज्ञी सन्तोषा कुक्षिसभूताया महं श्रीतेज पालद्वितीयभार्या महं श्री सुहडादेव्याः श्रेयोर्थ········यहासे आगेका हिस्सा टूट गया है परतु दूसरे ताकके लेखमे वह इसतरह है "एतत्रिगदेवकुलिका–खत्तकं श्रीअजितनाथबिम्बं च कारितं" इस लेखमें जाल्हण और आसको ठ॰ (ठकुर) लिखा है जिसका कारण यह अनुमान किया जाता है कि—वह जागीरदार हों दुसरे लेखोंमे वस्तुपालके पिता आसराज वगैरहकोभी ठ॰ (ठाकुर) लिखा है. राजपूतानेमे अवतक जागीरदार चारणकायस्थ आदिको लोग ठाकुर कहते हैं।

पाल, तेजपाल, जैत्रसिंह और लावण्यसिंह (लूणसिंह)की बैठी हुई मूर्तियां थी परंतु अब उनमेंसे एकभी नहीं रही। इन हथिनियोंके पीछेकी पूर्वकी दीवारमें १० ताक बनेहुए हैं जिनमें इन्हीं १० पुरुषोंकी स्त्रियोंसहित पत्थरकी खडीहुई मूर्तियां बनी हैं जिन सबके हाथोंमें पुष्पोंकी माला हैं और वस्तुपालके सिरपर पाषाणका छत्रभी हैं। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्रीका नाम मूर्तिके नीचे खुदाहुआ है। अपने कुटुंबभरका इस प्रकारका स्मारक चिन्ह बनानेका काम यहांके किसी दूसरे पुरुषने नहीं किया। यह मन्दिर शोभनदेवनामके शिल्पीने बनाया था। मुसलमानोंने इसकोभी तोड डाला जिससे इसका जीर्णोद्धार पेथड (पीथड) नामके संघपतिने करवाया था। जीर्णोद्धारका लेख एकस्तंभपर खुदाहुआ है परन्तु उसमें संवत् नही दिया। वस्तुपालके मन्दिरसे थोडे अंतरापर भीमासाहका जिसको लोग भैंसासाह कहते हैं बनवायाहुआ मन्दिर है जिसमें १०८ मन तोलकी पीतल (सर्वधात)की बनीहुई आदिनाथकी मूर्ति है जो वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६९) फाल्गुण सुदि ७ को गूर्जर श्रीमालजातिके मन्त्री मंडनके पुत्र मन्त्री सुन्दर तथा गदाने वहांपर स्थापित की थी।

---

१ आबुके इन मंदिरोको किस मुसलमान सुलतानने तोडा यह मालुम नही हुआ। तीर्थकल्पमे जो वि० स० १३४९ ई० स० १२९२ के आसपास बननाशरू हुवा और विक्रम स १३८४ ई० स० १३२७ के आसपास समाप्त हुआ था मुसलमानोका इनमदिरोंको तोडना लिखा है जिससे अनुमान होता है अलाउदीन खिलजीकी फोजने जालौरके चउआणराजा कानडदेपर वि० सं १३६६ इ० स० १३०९ के लगभग चढाइकी- उसवक्त यहाके मंदिरोंको तोडाहो जीर्णोद्धारमे जितना काम बनाहै वह सबका सब भद्दाहै

इन मन्दिरोंके सिवाय देलवाडेमें श्वेतांबर जैनोंके दो मन्दिर और हैं। चौमुखजीका तिमंजिला मन्दिर और शांतिनाथका मन्दिर। तथा एक दिगंबर जैनमन्दिरभी है। इन जैनमन्दिरोंसे कुछ दूर गांवके वाहर कितनेक टूटेहुए पुराने मंदिर औरभी हैं जिनमेंसे एकको लोग रासिया वालमका मंदिर कहते हैं। इस टूटेहुए मंदिरमें गणपतिकी मूर्तिके निकट एक हाथमें पात्र धरेहुए एक पुरुषकी खडीहुई मूर्ति है जिसको लोग रसियावालमेकी और दूसरी स्त्रीकी खडीहुई है जिसको कुंवारी कन्याकी मूर्ति वतलाते हैं। कोई कोई रसियावामको ऋषि वालमीक अनुमान करते हैं। यहांपर वि० स० १४५२ (ई० स० १३९५)का एक लेखभी खुदाहुआ है

अचलगढ-देलवाडेसे अनुमान ५ माइल उत्तर पूर्वमें अचलगढ नामका प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान है। पहाडके नीचे समान भूमिपर अचलेश्वर महादेवका जो आबूके अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं प्राचीन मन्दिर है। आबूके परमार राजाओंके ये कुलदेवता माने जाते थे और जबसे वहांपर चौहानोंका अधिकार हुआ तबसे चौहानोंकेभी इष्टदेव माने जाने लगे। अचलेश्वरका मन्दिर बहुत पुराना है और कईबार इसका जीर्णोद्धार हुआ है। इसमें शिवलिंग नहीं किन्तु शिवके पैरके अंगूठेका चिन्हमात्रही है जिसका पूजन होता है। इस मन्दिरमें अष्टोत्तरशत शिवलिंगके नीचे एक बहुत बडा शिलालेख वस्तुपाल तेजपालका खुदवाया हुआ है। उसपर जल गिरनेके कारण वह बहुतही बिगड गया है तोभी उसमें

गुजरातके सोलंकियों और आबूके परमारोंका वृत्तान्त तथा वस्तुपाल तेजपालके वंशका विस्तृत वर्णन पढनेमें आ सकता है जिससे अनुमान होता है कि तेजपालने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया हो अथवा यहांपर कुछ बनवाया हो। वस्तुपाल तेजपालने जैन होनेपरभी कई शिवालयोंका उद्धार करवाया था जिसका उल्लेख मिलता है। मन्दिरके पासही मठमें एक बडी शिलापर मेवाडके महारावल समरसिंहका वि० सं० १३४३ (इ० स० १२८६) का लेख है जिसमें बापा रावलसे लगाकर समरसिंह तक मेवाडके राजाओंकी वंशावली तथा उनका कुछ वृत्तान्तभी है। इस लेखसे पाया जाता है कि समरसिंहने यहांके मठाधिपति भावशंकरकी जो वडा तपस्वी था आज्ञासे इस मठका जीर्णोद्धार करवाया अचलेश्वरके मन्दिरपर सुवर्णका दंड (ध्वजदंड) चढाया और यहांपर रहनेवाले तपस्वियोंके भोजनकी व्यवस्था की थी। तीसरा लेख चौहान महाराव लुंभाका वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) का मन्दिरके बाहर एक ताकमें लगाहुआ है जिसमें चौहानोंकी वंशावली तथा महाराव लुंभाने आबूका प्रदेश तथा चन्द्रावतीको विजय किया जिसका उल्लेख है। मन्दिरके पीछेकी बावडीमें महाराव तेजसिंहके समयका वि० सं० १३८७ (ई० स० १३२१) माघसुदि २ का लेख है। मन्दिरके सामने पीतलका बना हुआ विशाल नन्दि है जिसकी चौकीपर वि० सं० १४६४ (ई० स० १४०७) चैत्र सुदि ८ का लेख है। नन्दिके पासही प्रसिद्ध चारण कवि दुरसा आढाकी बनवाईहुई उसीकी

पीतलकी मूर्ति है जिसपर वि० सं० १६८६ 'आषाढादि (ई० स० १६३०) वैशाख सुदि ५ का लेख हैं। नंदीसे कुछ दूर लोहका बनाहुआ एक बहुतही बडा त्रिशूल है जिसपर वि० सं० १४६८ (ई० स० १४१२ फाल्गुन सुदि १५ का लेख है। यह त्रिशूल राणा लाखा ठाकुर मांडण तथा कुंवर भादाने घाणेराव गांवमें बनवाकर अचलेश्वरको अर्पण किया था। लोहका ऐसा बडा त्रिशूल दूसरे किसी स्थानमें देखनेमें नहीं आया।

अचलेश्वरके मन्दिरके अहातेमें छोटे छोटे कई एक मन्दिर हैं जिनमें विष्णु आदि अलग अलग देवताओंकी मूर्तियां हैं मंदाकिनीकी तरफके कोनेपर महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) का बनवाया हुआ कुंभस्वामीका सुन्दर मन्दिर है। अचलेश्वरके मन्दिरके बाहर मंदाकिनी नामका बडा कुंड है जिसकी लंबाई ९०० फीट और चौडाई २४० फीटके करीब है इसके तटपर पत्थरकी बनीहुई परमार राजा धारावर्षकी धनुषसहित सुन्दर मूर्ति है जिसके आगे पूरे कदके तीन भैंसे एक दूसरेके पास खडेहुए हैं जिनके शरीरके आरपार एक एक छिद्र है जिसका आशय यह है कि धारावर्ष ऐसा पराक्रमी था कि पास पास खडेहुए तीन भैंसोंको एकही

---

१. आषाढादि गुजरातकी गीणनाके अनुसार आसाढ राजपूतानाके हिसावसे श्रावणसे प्रारभ होनेवाला वरस या संवत

इस लेखको वि० सं० १६८६ को आसाढादि माननेका कारण यहहै कि लेखमे वि० सं० के साथ सक सवत १५८२ लिखा हे जिससे स्पष्ट है कि यह मूर्ति चैत्रादि वि० सं० १६८७ आसाढादि १६८६ मे वनी थी।

बाणसे वींधडालता था जैसा कि पाटनारायणके लेखमें उसके विषयमें लिखा मिलता है। इस मंदाकिनीके तटके निकट सिरोहीके महाराव मानसिंहका मन्दिर है जो एक परमार राजपूतके हाथसे आबूपर मारेगये और यहांपर दग्ध किये गये थे। यह शिवमन्दिर उनकी माता धारबाइने वि० सं० १६३४ (ई० स० १५७७) में बनवाया था इसमें मानसिंहकी मूर्ति पांच राणियोंसहित शिवकी आराधना करती हुई खडी है। ये पांचो राणियां उनके साथ सती हुई होंगी।

इस मन्दिरसे थोडी दूरपर शांतिनाथका जैनमन्दिर है इसको जैनलोग गुजरातके सोलंकी राजा कुमारपालका बनवाया हुआ बतलाते हैं। इसमें तीन मूर्तियां हैं जिनमेंसे एकपर वि० सं० १३०२ (ई० स० १२४५) का लेख है।

अचलेश्वरके मन्दिरसे थोडी दूर जानेपर अचलगढके पहाडके ऊपर चढनेका मार्ग है इस पहाडपर गढ बना हुआ है जिसको अचलगढ कहते हैं। गणेशपोलके पाससे यहांकी चढाई शुरू होती है, मार्गमें लक्ष्मीनारायणका मन्दिर और उसके आगे फिर कुंथुनाथका जैनमन्दिर आता है जिसमें उक्त तीर्थंकरकी पीतलकी मूर्ति है जो वि० सं० १५२७ (ई० स० १४७०) में बनी थी। यहांपर एक पुरानी धर्मशाला तथा महाजनोंके थोडेसे घरभी हैं। यहांसे फिर ऊपर चढनेपर पहाडके शिखरके निकट बडी धर्मशाला तथा पार्श्व-

तीर्थकल्पमें कुमारपालका आबुपर एक जिनमंदिर बनवाना लिखा हे।

नाथ नेमिनाथ और आदिनाथके मन्दिर आते हैं जिनमें आदिनाथका मन्दिर जो चौमुख है मुख्य और प्रसिद्ध है यह दो मंजिला बना है और इसके नीचे तथा ऊपरकी मंजिलोंमें चार चार पीतलकी बनीहुई बडी बडी मूर्त्तियां हैं। यहांके लोग इस स्थानको नवंता जोध कहते हैं। दूसरी मंजिलकी छतपर चढनेसे सारे आबु तथा आबूकी तलहटीके दूरदूरके गांवोंका सुंदर दृश्य नजर आता है। इन मन्दिरोंमें पीतलकी १४ मूर्तियां हैं जिनका तोल १४४४ मन होना जैनोंमें माना जाता है। इनमें सबसे पुरानी मूर्ति मेवाडके महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा)के समय वि० सं० १५१८ (ई० स० १४६१) में बनी थी। यहांसे कुछ ऊपर सावन भादवा नामक दो जलाशय हैं जिनमें सालभरतक जल रहता है और पर्वतके शिखरके पास अचलगढ, नामका टूटा-हुआ किला है जो मेवाडके महाराणा कुंभकर्ण (कुंभो)ने वि० सं० १५०९ (ई० स० १४५२) में बनवाया था यहांसे कुछ नीचेकी ओर पहाडको काटकर बनाईहुई दो मंजिलवाली गुंफा है जिसके नीचेके हिस्सेमें दो तीन कमरेभी बने हुए हैं लोग इस स्थानको पुराणप्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रका निवासस्थान बतलाते हैं। यहां पहिले साधुभी रहते होंगे क्योंकि उनकी दो धूनियां यहांपर हैं।

चितोडके किलेपर कि महाराणा कुंभकर्णके बनवायेगये किर्तीस्थम्भकी प्रशस्तिमें अचलदुर्ग बनवाना लिखा है परंतु लोगोंका मानना यह है कि: यहांका किला परमारोंने बनायाथा। संभव है कि कुंभानेपरमारोंके बनाये हुये किलेका जीर्णोद्धार करवाया हो.

ओरिआ—अचलगढसे दो माइल उत्तरमें ओरिआ गांव है जहांपर कनखल नामक तीर्थस्थान है। यहांके शिवालयको जिसको कोटेश्वर (कनखलेश्वर कहते) हैं वि० सं० १२६५ (ई० स० १२०८) में दुर्वासाऋषिके शिष्य केदारऋषिनामक साधुने जीर्णोद्धार करया था उससमय आबूका राजा परमार धारावर्ष था जो गुजरातके सोलंकीराजा भीमदेव (दूसरे) का सामंत था ऐसा यहांके लेखसे जो वि० सं० १२६५ (ई० स० १२०८) वैशाखसुदि १५ का है पाया जाता है।

यहांपर महावीर स्वामीका जैनमन्दिरभी है जिसमें मुख्य मूर्ति उक्त तीर्थंकरकी है और उसकी एक ओर पार्श्वनाथकी और दूसरी ओर शांतिनाथकी मूर्त्ति है। ओरिआमें एक डाक वंगलाभी है।

गुरुशिखर—ओरिआसे तीन माइलपर गुरु शिखरनामक आबूका सबसे ऊंचा शिखर है जिसपर दत्तात्रेय (गुरुदत्तात्रेय) के चरणचिन्ह वने हैं जिनको यहांके लोग पगल्यां कहते हैं उनके दर्शनार्थ बहुतसे यात्री प्रतिवर्ष जाते हैं। यहांपर एक वडा घंट लटक रहा है जिसपर वि० सं० १४६८ ई० स० १४११ का लेख है। इस ऊंचे स्थानपरसे बहुत दूरदूरके स्थान नजर आते हैं और देखनेवालेको अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। यहांका रास्ता बहुतही विकट और वडी चढाईवाला है।

गोमुख (वशिष्ठ) आबूके बाजारसे अनुमान १½ माइल-दक्षिणमें जानेपर हनुमानका मंदिर आता है जहांसे करीब

७०० सीढियां नीचे उतरनेपर वशिष्ठऋषिका आश्रम आता है जो वडाही रमणीयस्थान है। यहांपर पत्थरके वनेहुए गौके मुखमेंसे एक कुण्डमें सदा जल गिरता रहता है इसीसे इस स्थानको गौमुख कहते हैं। यहांपर वशिष्ठका प्राचीन मंदिर हैं जिसमें वसिष्ठकी मूर्ति है और उसकी एक तरफ रामचन्द्रकी और दूसरी ओर लक्ष्मणकी मूर्ति हैं। यहांपर वशिष्ठकी स्त्री अरुंधतीकी तथा पुराणप्रसिद्ध नन्दिनीनामक कामधेनुकी वछडेसहित मूर्तिभी है। मंदिरके सामने एक पीतलकी खडी-हुई मूर्ति है जिसको कोई इन्द्रकी और कोई परमार राजा धारावर्षकी वतलाते हैं। यहां वशिष्ठ ऋषिका प्रसिद्ध अग्निकुण्ड है जिसमेंसे परमार पडिहार सोलंकी और चौहान वंशोंके मूलपुरुषोंका उत्पन्न होना लोगोंमें माना जाता हैं वशिष्टके मंदिरके पास वराहअवतार, शेषशायी नारायण, सूर्य, विष्णु, लक्ष्मी आदिकी कई एक मूर्तियां रखीहुई हैं मंदिरके द्वारके पासकी दीवारमें एक शिलालेख वि० सं० १३९४ (ई० स० १३३७ वैशाखसुदि १ का लगाहुआ हैं जो चंद्रावतीके चौहान राजा तेजसिंहके पुत्र कान्हडदेवके समयका है। इसीके नीचे महाराणा कुंभाका वि० सं० १५०६ (ई० स० १४४९) का लेख खुदा है।

गौतम—वशिष्ठके मंदिरसे अनुमान २ माइल पश्चिममें जाने बाद कई सीढियां उतरनेपर गौतमऋपिका आश्रम आता है यहांपर गौतमका एक छोटासा मंदिर है जिसमें विष्णुकी मूर्तिके पास गौतम तथा उनकी स्त्री अहिल्याकी मूर्तियां हैं।

मंदिरके बाहर एक लेख लगा हुआ है जिसमें लिखा है कि महाराव उदयसिंहकेराज्य समय वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) वैशाखसुदि ३ को बाई पार्वती तथा चंपाबाईने यहांकी सीढियाँ बनवाई।

बास्थानजी—आबूके उत्तरकी तरफके तलावमें शेरगांवकी तरफ बहुत नीचे उतरनेपर बास्थानजी नामक रमणीयस्थान आता है। जहांपर १८ फीट लंबी १२ फीट चौडी और ६ फीट ऊंची गुफाके भीतर एक विष्णुकी मूर्ति है उसके निकट शिवलिंग पार्वती तथा गणपतिकी मूर्तियां हैं। गुफाके बाहर गणेश भैरव वराह अवतार ब्रह्मा आदिकी मूर्तियां हैं.

उपरोक्त स्थानोंके सिवाय आबू पर्वतपर तथा उसके तलावोंमें अनेक पवित्र धर्मस्थान हैं जहांपर प्रतिवर्ष बहुतसे लोग यात्राके निमित्त जाते हैं।

आबुके सिवाय सिरोही राज्यमें मीरपुर गोल ऊथमण पालडी बागीन जावाल कालींद्री आदि अनेक ऐसे स्थल हैं जहांपर प्राचीनकालके बनेहुए मंदिर तथा १२ वी शताब्दीसे लगाकर १४ वी शताब्दीतकके शिलालेख मिलते हैं परन्तु उन सबका विवरण इस छोटेसे प्रकरणमें लिखना उचित नहीं समझा गया॥*

---

* रायबहादुर पंडित गौरीशंकर ओझा संग्रहीत "सीरोही राज्यका इतिहास" इस नामके पुस्तकसे उद्धृत॥

परिशिष्ट—नम्बर २.

आबुतीर्थपर छोटे वड़े अनेक जैनमंदिर हैं परंतु उन सबमे विमलमंत्रीका बनवाया "विमलवसहि" नामक मंदिर है, जिसको "ऋषभदेव" स्वामीका मंदिर कहते हैं। और तेजपालके पुत्र लूणसिंहके कल्याणके वास्ते बनवाये हुए लूणगवसहिके नामसे प्रसिद्ध वस्तुपाल तेजपालका बनवाया हुआ मंदिर है, जिसको "नेमिनाथ" स्वामीका मंदिर कहते हैं।

यद्यपि इनके अतिरिक्त आबुतीर्थके ऊपर औरभी अनेक जिनमंदिर वर्त्तमान कालमें विद्यमान हैं जिनके नाम परिशिष्ट नंबर १ में आचुके हैं और यहांभी लिखे जायेंगे तोभी मुख्य और विशाल मंदिर येही दो हैं। पहले श्रीऋषभदेवजीके मंदिरका नाम "विमलवसहि" इसवास्ते है कि यह विमलमंत्रीका बनवाया हुआ है।

दूसरे मंदिरका नाम "लूणगवसहि" इसवास्ते है कि वह वस्तुपालके भाई तेजपालके लडके लूणसिंहके कल्याण के निमित्त बनवाया गया है।

विमलमंत्रीका मंदिर पहले बना है, और वस्तुपाल तेजपालका पीछे बना है, "विमलवसहि"की प्रतिष्ठा वि. सं. १०८८ में हुई है। और "लूणगवसहि"की प्रतिष्ठा वि.

सं. १२८७ में हुई है । ऐसेही शासन नायक महावीर स्वामीका, और चौमुखजीका मंदिर भी प्राचीन और दर्शनीय है, परंतु ऐतिहासिक प्रमाणोंसे वह दोनो मंदिर इनसे पीछेके मालूम देते हैं ।

प्रसंगसे एक बात औरभी कह देनी जरूरी है कि, विमलमंत्रीने जब यहां मंदिर बनवानेकी तय्यारी की, तब ब्राह्मणोंने उनका सामना किया, विमलकुमार उस समय चंद्रावती और आबुपर स्वतंत्र सत्ता भोगता था तोभी— उसने मान लिया कि, किसीकी आत्माको क्लेश पहुंचाकर धर्मस्थान बनाना वीतराग देवकी आज्ञाके विरुद्ध है, अगर न्याय दृष्टिसे देखा और सोचा जाय तो मेरे स्वाधीनकी प्रजाको मेरा कहा मानना ही चाहिये तोभी शांतिसे सबके मनकी समाधानीसे इस कार्यका समारंभ किया जाय तो धार्मिक मर्यादाका बहुत अच्छी तरहसे पालन होसकता है, इसवास्ते ब्राह्मणोंको पूछा गया कि, तुम इस कार्यमें क्यों रुकावट करते हो ? इसके जवाबमें प्रतिपक्षी दलने यह कहा कि यह तीर्थ जैनोंका नहीं है, यहां जैनोंका कोई प्राचीन चिन्हभी विद्यमान नहीं है । विमलकुमारने तेलेकी तपस्या द्वारा सामने बुलाकर अंबिका माताको इस विषयका खुलासा पूछा तो माताने उसी जगह किसी वृक्षके नीचे जमीनमें रही हुई जिन प्रतिमा बतलाई और कहा कि, "कितनेक समयसे यहां जैन चैत्य मौजूद नहीं है तथापि यह तीर्थ ही जैनोंका नहीं है यह कहना सत्यका प्रतिपक्षी है" [देखो पृष्ठ ३१]

इस घटनामें हमें एक प्राचीन पुष्ट प्रमाण मिलता है, वह यह है कि—

पट्टावलियोंसे जाना जाता है कि,—"विक्रम संवत् ९९४ में उद्योतन सूरिजी महाराज पूर्व देशसे विहार करते हुए श्री"अर्बुदाचल" आबु तीर्थकी यात्रा करनेके लिये राजपूताना मारवाडमें आये" इस कथनसे विमलशाके होनेसे पहले आबू तीर्थपर जैनोंका यात्रार्थ आना सिद्ध होता है।

"विमलवसति" नामक मंदिर दंडनायक विमलने आचार्य श्रीवर्धमानसूरिजीके उपदेशसे बनवाया था. इसकी प्रतिष्ठा वि. संवत् १०८८ में उसी आचार्यके हाथसे हुईथी। इस मंदिरके तयार होनेमे १८५३००००० रुपये खर्च हुए थे। जिनप्रभसूरिजीने अपने बनाये तीर्थकल्पमें लिखा है कि— मुसलमानोंने इन दोनों मंदिरोंको तोड़ डाला था इसलिये वि. संवत् १३७८ में मह्णसिंहके पुत्र लल्लने और धनसिंहके पुत्र वीजडने विमलवसति का उद्धार कराया था। वैसेही लूणगवसति का उद्धार व्यापारी चंडसिंहके पुत्रने कराया था। एक बात और भी खास ध्यानमें रखने जैसी है कि—जिन जिन महापुरुषोंने यह मंदिर बनवाये हैं वह खुद सर्व प्रकारके सत्ताधारी थे। उनके हाथमें राज्य और प्रजाकी डोरी थी। वह खुद बडे दीर्घदर्शी थे। इसलिये उन्होंने घरके क्रोडों रुपये खर्च करके मंदिर बनवाये थे। लाखों रुपये खर्च करके श्रीसंघको बुलाया था और प्रतिष्ठा करवाई थी। परंतु दूरंदेशीके खयालसे उनके सदाके निर्वाहके लिये

बडे आसान तरीके बड दिये थे कि–जिनसे उन मंदिरोंकी पूजा होती रहे । वह तरीके आजके समाजको बडे अनुकरणीय–और आदरणीय हैं ।

कतिपय वाचक महाशयोंने मेरा लिखा "महावीर शासन" नामक हिन्दी पुस्तक देखा होगा, उसके प्रारंभमें "राता-महावीरका मंदिर" इस नामसे विख्यात एक दर्शनीय स्थानका और तद्गत श्रीमहावीर प्रभुकी प्रतिमाका फोटोभी दिया गया है । उस प्राचीन चैत्यकी पूजाके लिये मर्यादा पत्र लिखा गया था, जिसका संक्षिप्त सार यह है— "बलभद्रसूरि"जीके उपदेशसे "विदग्धराज" नामक राजाने यह मंदिर बनवाया, उत्सव पूर्वक प्रतिष्ठा करवाई, संवत् ९७३ आषाढ मासमें राजाने अपने राज्यके अच्छे अच्छे आदमियोंको बुलाकर उनकी सलाहसे यह आज्ञापत्र लिखा कि—जो जो व्यापारीलोग क्रयाणा लायें या लेजावें उनको चाहिये कि, वो वीस पोठिये बैलोंके पीछे एक रुपया देवें । मालके गाडेपर एक रुपया, ऐसेही तेलीयोंपर, खेती करनेवालोंपर, अनाजके वेचने और खरीदनेवालोंपर, दुकानदारोंपर, प्रत्येक वस्तुपर ऐसा हलका कर डाला गया था कि, जो देनेवालोंको कुछ मुश्किल नहीं पडता था । इस आमदनीमेंसे $\frac{1}{3}$ (तीसरा भाग) मंदिरजीके लिये और $\frac{2}{3}$ (बाकी दो भाग) विद्या–ज्ञानकी वृद्धिमें खरच किया जाता था । संवत् ९९६ माघ वदि ११ को मम्मट राजाने पुनः इस आज्ञापत्रका समर्थन किया था ।

विमलवसति नामक प्रासादकी एक भींतपर वि. संवत् १३५० माघ सुदि १ मंगलवारका एक लेख है जो कि आज्ञापत्रिकाके रूपमें है। जिसमें लिखा है कि—"चंद्रावती नगरीके मंडलेश्वर वीसलदेवको वहांके वाशिंदा—महाजन शा. हेमचंद्र, महाजन भीमाशा, महाजन सिरिधर, शेठ जगसिंह, शेठ श्रीपाल, शेठ गोहन, शेठ वरता महाजन वीरपाल आदि समस्त महाजनोंने प्रार्थना की कि आबु तीर्थके रक्षण (खर्च) वास्ते कुछ प्रबंध करना चाहिये। उनकी उस अर्जपर ध्यान देकर मंडलेश्वर वीसलदेवने—विमलवसति और लूणिगवसति इन दोनों मंदिरोंके खर्चके लिये और कल्याणकादि महोत्सवोंके करनेकेवास्ते व्यापारियोंपर और धंधेदारोंपर अमुक लाग लगाया है इत्यादि।

विमलमंत्रीके समय जैन धर्मका बड़ा उत्कर्ष था। इसलिये भाविकालमें क्या होगा इस बातकी चिन्ता उस वक्त थोडीही की जाती थी। परंतु वस्तुपाल तेजःपालके समयमें तो इस विषयका पूर्ण रूपसे विचार करना आवश्यक था; और उन निर्माताओंने इस विषय पर खूब गौर किया भी हैं। कालके दोषसे रक्षकही भक्षक होगये हों यह बात और है परंतु उन्होंने किसी किसमकी त्रुटि नहीं रखी थी। इस विषयकी विशेष विज्ञताके लिये वस्तुपाल तेजपालके मंदिरके संवत् १२८७ फाल्गुन वदि ३ रविवारके एक लेखका संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है।

"गुजरात मंडलमें चौलुक्य कुलोत्पन्न महामंडलेश्वर
"राणक श्रीलवणप्रसाददेव सुत महामंडलेश्वर राणक
"श्रीवीरधवलके समस्त मुद्रा व्यापार करनेवाले (महामंत्री)
"अणहिल्लपुर पाटणके निवासि पोरवाड़ ज्ञातीय–ठ. श्रीचंडप
"सुत–ठ. श्रीचंडप्रसाद पुत्र महं० सोमपुत्र. ठ. श्रीआस-
"राज और उनकी धर्मपत्नी ठ. श्रीकुमारदेवीके पुत्र और
"संघपति महं० श्रीवस्तुपालके छोटेभाई महं० श्रीतेजपालने
"अपनी भार्या अनुपमादेवीकी कुक्षिसे अवतरे हुए पुत्र
"महं० श्रीलूणसिंहके पुण्य और यशकी वृद्धिके लिये
"आबुपर्वतपर देलवाडा गाममें समस्त देव कुलिकालंकृत
"और हस्तिशालाओंसे सुशोभित—"लूणसिंहवसहिका"
"नामसे यह नेमिनाथ स्वामिका मंदिर बनवाया है।

"नागेन्द्र गच्छके आचार्य महेन्द्रसूरिजीकी शिष्य संततिमें
"आचार्य श्रीशान्तिसूरिजीके शिष्य आनन्दसूरिजीके शिष्य
"श्रीअमरचंद्रसूरिजीके पट्टधर श्रीहरिभद्रसूरिजीके शिष्य
"श्री"विजयसेन"सूरिजीने इस मंदिरकी प्रतिष्ठा की है।

इस धर्मस्थानकी व्यवस्था और रक्षाके लिये जो जो धर्मात्मा श्रावक नियत किये गये थे उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

महं० श्रीमल्लदेव, महं० श्रीवस्तुपाल, महं० श्रीतेजपाल, भाइयोंकी संतान और महं० श्रीलूणसिंहके मोसाल (नानके) के सर्वजनोंका, चंद्रावती नगरीके (पोरवाड ओसवाल

---

१ वस्तुपालका छोटाभाई।

श्रीमाल) समस्त महाजनका, और विशेष करके महं० तेजपालकी धर्मपत्नी अनुपमादेवीके भाई ठ० श्रीखींवसिंह. ठ० श्रीआंबसिंह और ठ० श्रीउदयसिंह. ठ० श्रीलीलाके पुत्र महं श्रीलूणसिंह तथा भाई ठ० श्रीजगसिंह और ठ० श्रीरत्नसिंहके कुल परिवारका उनकी वंश परंपराका जरूरी फरज है कि वह धर्मस्थानकी सार संभाल करें, और करावें। इस कार्यके निर्वाह करनेमें समस्त श्वेताम्बर श्रावक श्राविका कटिबद्ध रहें। यह स्थान सकल श्रीसंघका है इसवास्ते उन महाशयोंको उचित है कि, वह अपने जीवनके समान अपने पुत्र पौत्रोंके समान इस जिन चैत्यकी सार संभाल रखें।

(१) आगे जा करके एक मर्यादा ऐसी बांधी गई है कि इस मंदिरकी वर्षगांठका महोत्सव उबरणी और किसरउली गामके श्रीसंघने करना।

प्रतिवर्ष प्रतिष्ठाके दिन जो महोत्सव किया जाता है उसको वर्ष गांठ कहते हैं इस मंदिरकी प्रतिष्ठा फागण वदि ३ रविवारको हुई थी।

(२) ऐसेही दूसरे दिनका अर्थात् फा. कृ. चतुर्थीके दिनका उत्सव कासिंद्रा गामको करना होगा।

(३) फा. वदि पंचमी—बामणवाडाके लोगोंका फर्ज होगा कि तीसरे दिनका उत्सव वह करें।

(४) चौथे दिनका महोत्सव धवली गामके लोग करें।

(५) पांचवें दिनका अर्थात् फा. वदि सप्तमीके दिनकी पूजा मुंडस्थल महातीर्थके रहनेवाले और फीलिणी गामके रहनेवाले करें।

(६) फा. व. अष्टमीके दिनका उत्सव हुंडाउद्रा गामके और डवाणी गामके श्रीसंघको उचित है कि वह छट्ठे दिनका महोत्सव करें।

(७) सातवे दिनकी पूजा फा. व. नवमीके दिन मढार गामके लोग करावें और उत्सवभी वह ही करें।

(८) दशमीकी पूजा साहिलवाडाके लोग करावें और उत्सव पूर्वक इस आठवें दिनको गुजारें।

[इसके अतिरिक्त देलवाडेके श्रीसंघका फर्ज होगा कि, वह नेमिनाथ स्वामीके पांच कल्याणकोंका उत्सव उस उस तिथिमें प्रतिवर्ष करें]।

यह मर्यादा—आबु पर्वतके ऊपर देलवाडा गाममें–चंद्रावतीके राजा सोमसिंह देव और उनके पुत्र राजकुमार श्रीकान्हड देव आदि राजकुमारोंके सामने–समस्त राजवर्गके समक्ष बांधी गई है। इस शासन पत्रको प्रकट करनेके समय–चंद्रावतीका समस्त जन समुदाय चंद्रावतीके स्थान-पति–भट्टारक, कविवर्ग, गूगलीब्राह्मण, समस्त महाजन समुदाय–वैसेही अचलेश्वर, वशिष्ट कुंड, देउलवाड़ा श्रीमाता-महबुग्राम, औवाग्राम, औरासागाम, उतरछगाम, सिहरगाम, सालगाम, हिठुंजीगाम, आखीगाम, और धांधलेश्वर कोटडी आदि वारांगामोंके रहनेवाले स्थानपति, तपोधन, गूगली-ब्राह्मण, राठिय आदि समस्त प्रजावर्ग और भालि, भाडा, आदिगामोंके रहनेवाले श्रीप्रतिहार ग्रामके राजकीय लोग

विद्यमानथे, इतनाही नहीं यह सब इस कार्यमें सम्मत थे, इन सर्वकी पूर्ण इच्छासे यह शासन पत्र लिखा गया है।

इन सर्वमहाशयोंने हर्षपूर्वक इस बातको स्वीकार किया है कि, हम खुद जहांतक जीते रहेंगे वहांतक दिलोजानसे इस धर्मस्थानकी संभाल रखेंगे। हमारे सुपूत संतानोंकाभी कर्त्तव्य होगा कि वहभी इस धर्मस्थानका रक्षण पालन करें।

चंद्रावतीके नरेश सोमसिंहदेवने लूणसिंह वसतिकी पूजाके लिये डवाणी नामक गाम देवदानमें दिया है। इसलिये सोमसिंह देवकी यह प्रार्थना है कि, परमार वंशमें जो जो कोई रक्षक नरेश होवें वह सब इस परम पवित्र स्थानके रक्षण पालन द्वारा इस मर्यादाका निर्वाह करें।

तेजपालके मंदिरके पास जो 'भीमसिंह' का मंदिर कहा जाता है. उसमे मूलनायक-श्रीऋपभदेवस्वामीकी पित्तलमयी मूर्त्ति विराजमान है. उसमूर्त्तिपर और परिकरकी मूर्त्तियों-पर जो लेख हैं उनका भावार्थ यह है—

"वि. संवत्१५२५ फाल्गुण सुदि सप्तमी ७,शनिवार रोहिणी
"नक्षत्रके दिन आबु पर्वत उपर देवडा श्रीराज्यधरसागर
"डूंगरसीके राज्यमे शा. भीमाशाहके मंदिरमें गुजरात-
"निवासि श्रीमालज्ञातीय-राजमान्य-मंत्री मंडणकीभार्या-
"मोली के पुत्र महं सुंदर और सुंदरके पुत्ररत्न मंत्री गदाने
"अपने कुटुंब सहित १०८ मण प्रमाणवाली परिकर सहित
"यह जिन प्रतिमा बनवाई है।

और तप गच्छनायक-श्रीसोमसुंदरसूरिजीके पट्टधर

आचार्य श्रीलक्ष्मी सागर सूरिजीने सुधानन्दसूरि सोमजयसूरि महोपाध्याय जिनसोमगणि आदि शिष्य परिवार सहित इस प्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी ।

इस प्रतिष्ठाके करानेवाले श्रीलक्ष्मीसागर सूरिजीका और उनके सहचारी शिष्यमंडलका वर्णन गुरुगुण–रत्नाकर काव्यमे वर्णित है ।

प्रतिमाजीके बनवानेवाले गदाशाहका वर्णनभी इसी काव्यके तीसरे सर्गमे संक्षेपसे लिखा है ।

भाग्यवान् गदा शाह मंत्री गुजरात देशके प्रसिद्ध नगर अमदावादके रहनेवाले थे । महाजन जातिके आगेवान और सुलतानके सन्मानपात्र मंत्री थे । गदाशाह उससमयके प्रभावक श्रावक थे । इन्होने बहुत वर्षोंतक चतुर्दशीका उपवास श्रद्धापूर्वक किया था ।

पारणेमे आप अकेले भोजन कभी नही करते थे । दोसौ तीनसौ सधर्म्मी भाइयोंको साथ बैठाकर आप प्रसन्नतासे भोजन करते थे ।

इस पुण्यवान श्रावकने इस प्रभुप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके लिये अहमदावादसे एक बडा संघ निकाला था, जिसमे हजारों मनुष्य, सैंकडों घोडे, और सातसौ (७००) गाडे थे । उस सर्वसामग्रीके साथ आबुतीर्थपर आके एक लाख सोना मोहरें खर्चकर संघ भक्ति–अठाही महोत्सव शांतिक पौष्टिक क्रिया सहित सहस्रों याचकोंको दान देकर उनके आशीर्वाद पूर्वक प्रभुप्रतिष्ठा करवाई थी ।

इस मंदिरमे आदिनाथकी प्रतिमाके पहले महावीर प्रभुकी प्रतिमा होगी ऐसा अनुमान होसकता है। चौथा मंदिर वह है कि जिसको लोग सिलाटोंका मंदिर कहते हैं। इसका असली नाम "खरतर-वसति" है। इसकी प्रतिष्ठा करानेवाले जिनचंद्र सूरि वि. संमत् १५१४ से १५३० तक विद्यमान थे।

देलवाड़ेकी यात्रा करके अचलगढ जाया जाता है। वहां भी भव्य और मनोहर जिन चैत्य और जिन प्रतिमाएँ हैं जिनका वर्णन परिशिष्ट नंबर १ के पृ. ७२ से ७७ तक लिखा गया है।

परिशिष्ट नं. २ के पृ. ८३ पर इस बातका भी वर्णन कर-दिया गया है कि दशवीं शताब्दीमें भी आबुतीर्थपर जैन मंदिर थे, इस बातको उद्योतन सूरिजीके आगमन वृत्तान्तसे स्फुट करनेकी चेष्टा की गई है और वह जिकर सहस्रावधानी परम संवेगी विद्वन्मुखमंडन श्रीमुनिसुंदरसूरिजीकी बनाई पट्टाव-लिके आधारसे लिखा गया है।

वाचक महाशय परिशिष्ट नं. १ में पढ चुके हैं कि—

कर्नल टॉड साहबने हिंदुस्तानमें जो जो इमारतें देखीथीं उससेंसे आबुके मंदिरोंको प्रथम स्थान दिया था। परंतु अफसोस है कि १९००० माईलके फांसलेपर बैठे हुए शिल्पियोंकी शिल्प कलाको सुनकर हम आश्चर्यमें गर्क होते जाते हैं और प्रत्यक्ष विद्यमान वस्तुको प्रेमसे निरीक्षण करनेकीभी हमे फुरसत नहीं।

अपने पूर्वजोंकी कुशलताको न जानकर उनकी तहजीबके

प्रत्यक्ष दृष्टान्तोंकी ओर लक्ष्य न दें। उनकी कार्यपद्धतिकी सूक्ष्म बुद्धिसे पर्यालोचना किये विनाही हम आज कालके आविष्कारोंको देख सुनकर अपने पूर्वजोंकी बुद्धिकी अव-गणना कर बैठते हैं। किसीने कैसे अच्छे शब्दोंमें कह दिया है कि—

"मिलव मिल्टण मॉरलेके वनगये हलका वगोश,
"वेचदी बाज़ारे लंडनमें है सारी खिरदो होश।
"मग़रवी तहज़ीव का तु इतना मतवाला हुआ,
धर्मकी क़ीमत तेरे एक चायका प्याला हुआ"।

हमें अफसोस है उन प्रसिद्ध इतिहास लेखकोंकी धर्म-द्विष्टता पर कि जिन्होंने बुद्धिवलको धर्मद्वेषसे विफल करते हुए इन प्राचीन तीर्थोंका उल्लेख करनेमें संकोच किया है। सप्ताश्चर्य जैसे ग्रंथोंके लेखकोंने हजारों कोसोंकी दूरीपर रहेहुए पिरामिडोंके और डायना देवी जैसी देव मूर्तियोंके वर्णन लिखनेमें अपना बुद्धिवल खर्च दिया, परंतु जिन आश्चर्यजनक हिन्दके अलंकार रूप दिव्य मंदिरोंको देखनेके लिये विलायतोंसे प्रेक्षक आते हैं और देख देखकर सिर धूनाते हैं उनका नाम मात्र भी वह अपनी कलमसे, नहीं मालूम, क्यों न लिखसके। यह धन्यवाद है पंडित गौरीशंकरजी ओझाको कि—

जिन्होंने इन पुनीत एवं प्राचीन दर्शनीय स्थानोंका थोडे परंतु मध्यस्थ वृत्तिके अक्षरोंमें वर्णन कर दिया है। इससे हमारा आशय यह है कि, ज़माना बदला है। दुनियामें

सौहार्दके श्रोत वहने लगे हैं। ऐसे साम्यवाद और मध्यस्थवादके समयमे कोईभी व्यक्ति स्वधर्मगत उत्तम वस्तुको दिखाए तो लोग उसकी कदर करते हैं। बुद्धधर्मका फैलाव हिन्दुस्थानमें नहीं, तो भी उनके जीवनचरित्र हिन्दुस्थानके साहित्य प्रेमियोंने लिखे। बुद्धदेव की मूर्तियां आजके राजा महाराजा शेठ शाहुकार बनवा रहे हैं। गुजरातके साहित्यप्रेमी महाराजा सयाजी रावने अभी थोडेही वर्षोंमें कई रुपये खर्च कर एक भव्य मनोहर मूर्त्ति बनवाकर खास एक नये बागीचेमे एक दर्शनीय वेदिकापर स्थापन करवाई है, जिसे हजारों मनुष्य आनंदकी दृष्टिसे देखते हैं।

अजमेरमें रायबाहादूर पंडित गौरीशंकरजी ओझाने हमारे गुरु महाराजको सरकारसे संगृहीत प्राचीन वस्तुएँ दिखाते हुए एक शिलालेखका परिचय करा कर कहा था कि, यह शिलालेख महावीर प्रभुके निर्वाणसे सिर्फ ८० वर्ष पीछेका है। आजतक जितने शिलालेख मिल सके हैं उन सबमें यह जैनलेख अति प्राचीन है।

सारांश इतनाही है कि, जिस किसी तत्त्वज्ञको जो कोई प्रामाणिक वस्तु हाथ आजावे वह आदरपूर्वक उसको ग्रहण करता है। और निष्पक्षपात वृत्तिसे उसको प्रकाशित भी करता है। परंतु अपनी वस्तुके गुण दूसरोंके कानतक पहुंचाने यह तो हमारा ही फरज है। इसीलिये हमें उससेभी अधिकतर दुख है उन जैन नेताओंकी संकुचित दृष्टिपर

"महावीरने भारतमें ऐसा संदेश फैलाया–कि धर्म केवल सामाजिक रूढि नहीं किन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष वाहिरी क्रियाकांडके (ही) पालनसे नहीं किन्तु सत्यधर्मका आश्रय लेनेसे मिलता है। धर्ममें मनुष्य मनुष्यके प्रति कोई स्थायी भेदभाव नहीं रह सकता। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीरकी इस शिक्षाने समाजके हृदयमें जड जमा कर वैठी हुई इस भेद–भावनाको वहुत शीघ्र नष्टकर दिया और सारे देशको अपने वश कर लिया। और अव इस क्षत्रिय उपदेशकके प्रभावने ब्राह्मणोंकी सत्ताको पूर्णरूपसे दवा दिया है"।

फिर देखिये लोकमान्य श्रीयुत् वाल गंगाधर तिलक लिखते हैं कि—

"अहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मणधर्म-पर चिरस्मणीय छाप (मोहर) मारी है। यज्ञ यागादिमें पशु-ओंका वध होकर जो यज्ञार्थ 'पशुहिंसा' आजकल नहीं होती है जैनधर्मने यही एक वडीभारी छाप ब्राह्मणधर्मपर मारी है

---

1 Mahavir proclaimed in India the message of salvation that religion is a reality and not a mere social convention, that salvation comes from taking refuge in that true religion, and not from observing the external ceremonies of the community, that religion cannot regard any barrier between man and man as an eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly overtopped the barriers of the race's abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kshatriya teachers completely suppressed the Brahmin power.

पूर्वकालमें यज्ञके लिये असंख्य पशुओंकी हिंसा होतीथी। इसके प्रमाण मेघदूतकाव्य तथा औरभी अनेक ग्रंथोंसे मिलते हैं।

रंतीदेवनामक राजाने यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशुवध हुआथा कि नदीका जल खूनसे रक्त होगया था। उसी समयसे उस नदीका नाम चर्मण्वती प्रसिद्ध है। पशुवधसे स्वर्ग मिलता है–इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है! परंतु इस घोर हिंसाका ब्राह्मणधर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैनधर्मके हिस्सेमें है।

ब्राह्मणधर्ममे दूसरी त्रुटि यह है कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रोंको समान अधिकार प्राप्त नहीं था।

यज्ञयागादि कर्म केवल ब्राह्मणही करते थे। क्षत्रिय और वैश्योंको यह अधिकार नहीं था। और शूद्र बेचारे तो ऐसे बहुतसे कार्योंमें अभागे थे।

इसप्रकार मुक्ति प्राप्त करनेकी चारों वर्णोंमें एकसी छुट्टी नहीं थी। जैनधर्मने इस त्रुटिको पूर्ण किया है"।

आबुजैनमंदिरोंके निर्माताओंमे इस वक्त दोनों व्यक्तियोंके नाम प्रसिद्ध हैं। एक तो विमलशाह मंत्री, और दूसरे नंबरमे वस्तुपाल और तेजपाल।

विमलशाह मंत्रीके लिये गुजरातमें एक ऐसी दंतकथा चलती है कि उसने ३३६ मंदिर बनवाये थे। जिनमेंसे सिर्फ पांच मंदिर कुंभारियाजीमें विद्यमान हैं। यह स्थल आबु-

पर्वतके पास रहे हुए अंबाजी नामक प्रसिद्ध स्थानके पास करीबन डेढ माईलके फासलेपर है ।

वस्तुपाल तेजपालके बनवाये मंदिर शत्रुंजय–गिरनार–साचोर–पाटण–पावागड चांपानेर आदि स्थलोंमे थे और हैं। कहा जाता है कि इन भाग्यवानोंने अपनी हकूमतके समयमें तीस अरब तिहत्तर क्रोड बत्तीस लाख और सात हजार रुपये धर्मकार्योंमें खर्चे थे ।

दूसरी बात एक और विचारनेकी है कि गुणज्ञता मनुष्यका जरूरी भूषण है "नाऽगुणी गुणिनं वेत्ति, गुणी गुणिषु मत्सरी।

सुना जाता है कि जिसवक्त आबुतीर्थपर वस्तुपाल तेजपालने मंदिर बनवाने शुरु किये तब शोभनदेव नामक मिस्तरीको इस कामके तयार करनेकी आज्ञा और प्रेरणा हुई । शोभनदेवने २००० मनुष्योंको साथमे लगाकर कार्य करना शुरु किया । उन सबको तनखाह देनेका कार्य तेजपालके सालेके हाथ दिया गया । जब उसने देखा कि मासिक हजारों रुपैये मजदूरी दी जाती है। लाखों रुपयोंका सामान मंगवाया जाता है परंतु काम तो कुछभी नहीं होता। कारीगर खातेपीते और मौज करते हैं । उसको यह सब अनुचित मालूम हुआ । तब उसने उनकी शिकायतका पत्र धोलके वस्तुपाल तेजपालको लिखा। जवाब आया कि तुमको शोभनदेवके और उनके साथियोंके छिद्र देखनेके वास्ते ही वहां नहीं भेजा गया । तुमारा अधिकार पैसा देनेका है सो तुम दिये जाओ। काम वह करें न करें उनका अखतियार है।

यह बात शोभनदेवने भी सुनी, तब उसके मनमें चोट लग गई कि अहो ऐसे सज्जनस्वामीकी हम मन इच्छित आजीविका खावें और काम न करें तो हमारे जैसा दुर्जन कौन ? बस वह दिन और वह घडी—काम करना शुरु हुआ—अब कहना क्या था ? देवताओंकोभी दर्शनीय सुंदर मंदिर तय्यार हुआ। उस घटनाको और शोभनदेवकी उस कार्यकुशलताको देखकर आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिजीने अपने बनाये तीर्थकल्प ग्रंथमें जो प्रशंसा की है वह नीचे दर्ज है।

अहो शोभनदेवस्य, सूत्रधारशिरोमणेः।
तच्चैत्यरचनाशिल्पान्नाम लेभे यथार्थताम् ॥ १ ॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

परिशिष्ट—नम्बर ३.

[हालहीमें हिन्दीकी सुप्रसिद्ध "सरस्वती" मासिक पत्रिकामें सरस्वतीके भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदीने एक ग्रन्थकी समालोचना करते हुए अपनी गुणज्ञता, गुणग्राहकता, निर्भीकता एवं स्पष्ट-वक्तव्यताका परिचय दिया है अवश्य मनन करने योग्य समझकर अक्षरशः उसको यहां उद्धृत किया है। वाचकवृन्द इससे अवश्य लाभ उठावें-ग्रन्थकर्त्ता]

प्राचीन जैन-लेख-संग्रह।

[समालोचना]

(सरस्वती जून १९२२ से उद्धृत)

एक समय था जब जैन-धर्म्म, जैन-संघ, जैन-मंदिर, जैन-ग्रंथ-साहित्य और जैनोंके प्राचीन लेखोंके विषयमें खुद जैन धर्म्मावलम्बियोंकाभी ज्ञान बहुतही परिमित था। साधारण जनोंकी तो बातही नहीं, असाधारण जैनीभी इन बातोंसे बहुतही कम परिचय रखते थे। इस दशामें और धर्मके विद्वानोंकी अवगतिका तो कुछ कहनाही नहीं। वे तो इस विषयके ज्ञानमें प्रायः बिलकुलही कोरे थे। और, प्राचीन ढर्रेके हिन्दूधर्म्मावलम्बी बड़े बड़े शास्त्रीतक, अब भी नहीं जानते कि जैनियोंका स्याद्वाद किस चिड़ियाका नाम है। धन्यवाद है जर्मनी, और फ्रांस, और

इंगलैंडके कुछ विद्यानुरागी विशेषज्ञोंको जिनकी कृपासे इस धर्म्मके अनुयायियोंके कीर्ति–कलापकी खोजकी ओर भारतवर्षके साक्षर जनोंका ध्यान आकृष्ट हुवा। यदि ये विदेशी विद्वान् जैनोंके धर्म्म-ग्रंथों तथा जैन मंदिरों आदिकी आलोचना न करते, यदि ये उनके कुछ ग्रंथोंका प्रकाशन न करते, और यदि ये जैनोंके प्राचीन लेखोंकी महत्ता न प्रकट करते तो हम लोग शायद आज भी पूर्ववत्‌ही अज्ञानके अंधकारमें ही डूबे रहते।

पश्चिमी देशोंके पण्डितोंकी बदौलतही अपने देशके जैन-विद्वानोंको अपना घर ढूंढनेकी बहुत कुछ प्रेरणा हुई। धीरे २ उनकी यह प्रेरणा ज़ोर पकड़ती गई। जैसे २ उन्हें अपने मंदिरोंके पुराने पुस्तकालयोंमें प्राचीन पुस्तकें मिलती गईं तैसेही तैसे उनका उत्साह बढ़ता गया। फल यह हुवा कि किसी २ जैनेतर पण्डितनेभी जैनोंके ग्रंथ-भाण्डार टटोलने आरंभ किये। इस प्रकार अनेक प्राचीन पुस्तकें प्रकाशित होगईं। इधर, भारतवर्षमें ही, कुछ विदेशी विद्वानोंनेभी जैनियोंके ग्रंथों और प्राचीन लेखोंके पुनरुद्धारके लिये कमर कसी। उनकी इस प्रवृत्ति और परिश्रमसेभी जैन–साहित्यका कुछ २ पुनरुज्जीवन हुवा। अब तो इस काममें कितनेही जैन विद्वान् जुट गये हैं और एकके बाद एक प्राचीन ग्रंथ प्रकाशित करते चले जा रहे हैं।

जैन धर्म्मावलम्बियोंमें सैंकड़ों साधु–महात्मा और सैंकड़ो, नहीं हजारों विद्वानोंने ग्रंथरचना की है। उनकी

इस रचनाका बहुत कुछ अंश इस समय अप्राप्य है। कुछ तो अराजकताके कारण नष्ट होगया, कुछ काल वली खा गया, कुछ कृमिकीटकोंके पेटमें चला गया। तथापि जो बच रहा है उसेभी थोड़ा न समझना चाहिये। अबभी जैन मंदिरोंमें प्राचीन पुस्तकोंके अनेकानेक भाण्डार विद्यमान हैं। उनमें अनंत ग्रंथरत्न अपने उद्धारकी राह देख रहे हैं। ये ग्रंथ केवल जैन धर्म्मसेही संबंध नहीं रखते। इनमें तत्त्व-चिन्ता, काव्य, नाटक, छन्द, अलंकार, कथा-कहानी और इतिहास आदिसेभी संबंध रखनेवाले ग्रंथ हैं, जिनके उद्धारसे जैनेतर जनोंकी भी ज्ञान-वृद्धि और मनोरंजन हो सकता है। भारतवर्षमें जैन धर्म्मही एक ऐसा धर्म है जिसके अनुयायी साधुओं (मुनियों) और आचार्योंमेंसे अनेक जनोंने, धर्म्मोपदेशके साथही साथ अपना समस्त जीवन ग्रंथ-रचना और ग्रंथ संग्रह में खर्च कर दिया है। इनमेंसे कितनेही विद्वान्, बरसातके चार महीने तो, बहुधा केवल ग्रंथ-लेखनहीमें बिताते रहे हैं। यह इनकी इसी सत्प्रवृत्तिका फल है जो बीकानेर, जैसलमेर और पाटन आदि स्थानोंमें हस्तलिखित पुस्तकोंके गाड़ियों बस्ते अबभी सुरक्षित पाये जाते हैं।

मंदिर-निर्माण और मूर्त्तिस्थापनाभी जैनधर्मका एक अङ्ग समझा जाता है। इसीसे इन लोगोंने इस देशमें हजारों मंदिर बनाडाले हैं और हजारोंका जीर्णोद्धार कर दिया है। मूर्त्तियोंकी कितनी स्थापनायें और प्रतिष्ठायें की हैं, इसका

तो हिसाबही नहीं । उनकी गिनती तो शायद लाखोंतक पहुंचे। पर वे इस काममें भी अपने साहित्य-प्रेमको नहीं भूले। मंदिरोंमें इन लोगोंने बड़े २ लेख और प्रशस्तियां खुदवा दी हैं । उनमेंसे कोई कोई लेख इतने बड़े हैं कि उन्हें छोटे मोटे खण्ड-काव्यही कहना चाहिये । यहांतक कि मूर्त्तियोंतकमें उनके प्रतिष्ठापकों और निर्माताओंके नामनिर्देश आदिके सूचक छोटे २ लेख पाये जाते हैं।

यदि इन सबका संग्रह प्रकाशित किया जाय तो शायद महाभारतके सदृश एक वहुत बड़ा ग्रंथ होजाय । मंदिरों और मूर्त्तियोंके यह प्राचीन लेख इतिहासकी दृष्टिसे बड़ेही महत्त्वके हैं । इनमें उस समयके राजाओं, राजकुमारों, मन्त्रियों, बादशाहों, शाहजादों आदिकाभी, सन्-संवत् समेत उल्लेख है और निर्माताओं तथा उद्धारकोंकी भी वंशावली आदि है। इसके सिवा जैनसंघों और जैनाचार्यों आदिकी वंशपरम्पराके साथ औरभी कितनीही बातोंका वर्णन है। जैनोंके कोई कोई तीर्थ ऐसे हैं जहां इस प्रकारके प्राचीन लेख अधिकतासे पाये जाते हैं । पर तीर्थोंहीमें नहीं, छोटे छोटे ग्रामोंतक के मंदिरोंमें प्राचीन लेख देखे जाते हैं। इन लेखोंमें जैन साधुओंके कार्यकलापका भी वर्णन मिलता है। किस साधु या किस मुनिने कौनसा ग्रंथ बनाया और कौनसा धर्म्म-वर्द्धक कार्य किया, ये बातेंभी अनेक लेखोंमें निर्दिष्ट हैं। अकबर इत्यादि मुगल-बादशाहोंसे जैन-धर्मको कितनी सहायता पहुंची, इसकाभी उल्लेख कई लेखोंमें है।

जैनोंके इस तरहके सैकड़ों प्राचीन लेखोंका संग्रह, संपादन और आलोचन विदेशी और कुछ स्वदेशी विद्वानोंके द्वारा हो चुका है। उनका अँगरेज़ी अनुवादभी, अधिकांशमें, प्रकाशित होगया है। पर किसी स्वदेशी जैन पण्डितने इन सबका संग्रह, आलोचनापूर्वक, प्रकाशित करनेकी चेष्टा नहीं कीथी। महाराजा गायकवाड़के कृपाकटाक्षकी बदौलत पुरानी पुस्तकोंके प्रकाशनका जो कार्य बड़ौदेमें, कुछ समयसे, हो रहा है उसके कार्य कर्त्ताओंनेभी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, यद्यपि जैनोंके कितनेही प्राचीन मंदिर, लेख और ग्रंथ बड़ौदाराज्यमें विद्यमान हैं। इस काममें हाथ लगाया है एक साधु-मुनि जिनविजयने। गुजरात विद्यापीठने, अहमदाबादमें, एक गुजरात पुरातत्त्व-संशोधनमंदिरकी संस्थापना की है। मुनि महाशय उसी मंदिरके आचार्य हैं। आपका पता है-हलीसब्रिज, अहमदाबाद। यद्यपि भारतवर्षमें जैनग्रंथ और जैनमंदिर थोड़ेबहुत सब कहीं पाये जाते हैं, तथापि दक्षिणी भारत, गुजरात और राजपूतानेहीमें उनका आधिक्य है। क्योंकि जैनधर्म्मका प्राबल्य उन्हीं प्रान्तोंमें रहा है और अबभी है। अत एव अहमदाबादमेंही इसप्रकारके संशोधन-मन्दिरकी स्थापना होना सर्वथा समुचित है। इंडियन ऐंटिक्वरी, इपिग्राफिआ इंडिका, सरकारी गैज़ेटियरों और आर्कियालाजिकल रिपोर्टों तथा अन्य पुस्तकोंमें जैनोंके कितनेही प्राचीन लेख प्रकाशित हो चुके हैं। बूलर, कौसेंस, किर्स्टे, विलसन, हुल्ट्श, केलटर और कीलहार्न आदि विदेशी

पुरा-तत्त्वज्ञोंने बहुतसे लेखोंका उद्धार किया है । पर इन पुस्तकोंके लेखकोंसें कहीं कहीं प्रमाद होगये हैं । अत एव पुराने प्रमादोंको दूरीकरण और समस्त प्राचीन लेखोंके प्रकाशनके लिये ऐसे संशोधन मंदिरकी बड़ी आवश्य-कता थी । संतोषकी बात है, यह आवश्यकता, इसतरह, दूर होगई ।

इस संशोधनमंदिरके कार्य कर्त्ताओंनें "प्राचीन जैन-लेख-संग्रह" नामका एक ग्रंथ निकाला है । उसका दूसरा भाग हमारे सामने है । पहला भाग हमारे देखनेमें नहीं आया । वह शायद कभी पहिले निकल चुका है । दूसरा भाग बहुत बड़ा ग्रंथ हैं । आकारभी बड़ा है । पृष्ठसंख्या आठसौंसे कुछ कम है । छपाई और काग़ज़ अच्छा और जिल्द बड़ी सुन्दर है । मूल्य ३॥) है । इसके संग्राहक और सम्पादक हैं, पूर्वोक्त मुनि जिनविजयजी । और प्रकाशक है, श्री जैन-आत्मानंद-सभा, भावनगर । सूचियों आदिको छोड़कर पुस्तक मुख्यतया दो भागोंमें विभक्त है । पहिले भागमें जैनोंके ५५७ प्राचीन लेखोंकी नकल है । यह लेख देवनागरीके मोटे टाईपमें छपे हैं । लेखोंकी भाषा अधिकांश संस्कृत है । दूसरे भागके ३४४ पृष्ठोंमें पहिले भागके लेखोंकी आलोचना है । यह भाग गुजराती भाषामें है और गुजरातीही टाईपमें छपा है । आरंभकी भूमिका आदिभी गुजरातीहीमें है ।

जैनियोंके दो सम्प्रदाय हैं-एक दिगम्बर, दूसरा

श्वेताम्बर। दिगम्बर सम्प्रदायका विशेष दौर दौरा दक्षिण भारतमेंही रहा है और अबभी है। श्वेताम्बर-संप्रदायका अधिक प्रचार पश्चिमी भारत और राजपूतानेमें है। इस पुस्तकमें, इसीसे, अधिकांश श्वेताम्बरसंप्रदायके लेखोंका संग्रह किया गया है, क्योंकि यह सारे लेख पश्चिम भारत और राजपूतानेसेही सम्बंध रखते हैं। जैनोंके प्राचीन लेख तीन प्रकारके हैं—

(१) पत्थरकी पट्टियोंपर खोदे हुये लेख
(२) मूर्त्तियोंपर खोदे हुये लेख
(३) ताम्रपत्रोंपर खोदे हुये लेख

इस पुस्तकमें जिन लेखोंका संग्रह है वे पत्थरकी पट्टियों और पत्थरहीकी मूर्त्तियोंपर उत्कीर्ण लेख हैं। धातुकी मूर्त्तियोंपरभी हज़ारों लेख पाये जाते हैं, पर वे छोड़ दिये गये हैं। साथही ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण लेखोंकाभी समावेश नहीं किया गया। यह छोड़ाछोड़ी करनेपरभी लेखोंकी संख्या पांचसौसे ऊपर पहुंच गई है। इनमेंसे कितनेही लेख बहुत बड़े हैं।

आजतक यद्यपि सैंकड़ो-किम्बहुना इससेभी अधिक-जैनलेख प्रकाशित हो चुके हैं। पेरिस (फ्रांस)के एक फ्रेंच पण्डित, गेरिनाट, ने अकेलेही १९०७ ईस्वीतकके कोई ८५० लेखोंका संग्रह प्रकाशित किया है। पर उसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर, दोनों सम्प्रदायोंके लेखोंका सन्निवेश है। तथापि हज़ारों लेख अभी ऐसे पड़े हुये हैं जो प्रकाशित नहीं हुये। मुनि महाशयने अपनी प्रस्तुत

पुस्तकमें भिन्न २ पुस्तकों और रिपोर्टोंसेभी अपने मतलबके लेख उद्धृत किये हैं, और स्वयं अपनी खोजसेभी सैंकड़ों नये नये लेखोंका समावेश किया है। उदाहरणार्थ, आबूके लेखोंकी संख्या २०८ है। पर उनमेंसे केवल ३२ लेख एपिग्राफ़िआ इंडिकाके आठवें भागमें प्रकाशित हो चुके हैं। बाकीके सभी लेख इस पुस्तकमें पहिलेही पहल छापे गये हैं। यही बात औरोंके विषयमेंभी जाननी चाहिये।

पुस्तकके पहिले भागमें संख्यासूचक अंक, यथाक्रम, देकर लेख रखे गये हैं। दूसरे भागमें उसी क्रमसे लेखोंकी समालोचनी की गई है। कौन लेख कहां मिला है, किस समयका है, पहिले कभी प्रकाशित हुआ है या नहीं, उससे उस समयकी कौन २ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है, उस समय विशेषकरके उस प्रांतकी राजकीय और सामाजिक स्थिति कैसी थी, जैनसंघोंकी स्थिति कैसी थी, किस संघकी परम्परामें कौन आचार्य कब हुआ, इन सब बातोंका विचार आलोचनाओंमें किया गया है। उल्लिखित साधुओं और आचार्योंकी शिष्यमंडलीमें कौन कौन व्यक्ति नामी हुआ और उसने किस २ ग्रंथकी रचना की, इसकाभी उल्लेख किया गया है। पूर्वप्रकाशित लेखोंके संपादकोंकी भूलोंकाभी निदर्शन किया गया है और यहभी दिखलाया गया है कि पुस्तकस्थ लेखोंमें निर्दिष्ट घटनाओं और प्रसिद्ध पुरुषोंके अस्तित्व समयके जो उल्लेख अन्यत्र मिलते हैं उनसे इन लेखोंमें कियेगये उल्लेखोंसे कहांतक मेल है। यदि कहीं मेल नहीं तो उल्लिखित सन्-संवतोंमें कौनसा सन

संवत् अधिक विश्वसनीय है । सबसे पुराना लेख इस पुस्तकमें नम्बर २१८ है । उसका प्राप्तिस्थान हस्तिकुण्डी और समय विक्रम संवत् ९९६ है। इसीतरह सबसे पिछला लेख नंबर ५५६ है । वह संवत् १९०२ का है और अहमदाबादमें मिला है । इसप्रकार विक्रमकी १० वीं शताब्दीसे लेकर बीसवी शताब्दीके आरंभतकके-कोई-एक हजार वर्षतकके-लेखोंका संग्रह इस पुस्तकमें है । इससे पाठक, इस संग्रहके महत्त्वका अनुमान अच्छीतरह कर सकेंगे । तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दीके लेखोंकी संख्या औरोंसे अधिक है । उस समय जैनधर्म बड़ी उन्नत दशामें था। अनेक राजा, महाराजा, अमात्य और सेठ साहुकार उस समय इस धर्मके अनुयायी होगये हैं। उन्होंने अनंत मूर्त्तियों, मंदिरों और प्रासादोंकी संस्थापना की और बहुतोंका जीर्णोद्धारभी किया।

इस संग्रहमें सबसे महत्त्वके वे लेख हैं जिनका सम्बंध शत्रुंजय तीर्थ, गिरिनार पर्वत, और अर्बुदगिरि अर्थात् आबूसे है।

औरभी कितनेही पुराने नगरों, गांवों और तीर्थोंके लेख ऐतिहासिक सामग्रीसे परिलुप्त हैं या उससे सम्पर्क रखते हैं । तथापि उल्लिखित तीनों स्थानोंके लेख महत्तामें सबसे अधिक हैं । मृत्युंजय तीर्थके लेखोंकी संख्या ३८, गिरिनार पर्वतके लेखोंकी २५ और आबूके लेखोंकी २०८ है। इसप्रकार तीन जगहोंके लेखोंकी संख्या २७१ हुई।

अत एव कुल ५५७ में २८६ लेख और स्थानोंके हैं और बाकी इन्हीं तीनों जगहोंके हैं।

जैनियोंका शत्रुंजय तीर्थ गुजरातके पालीताना नामक स्थानके पास है। उसका १२ नंबरका शिलालेख बडे मारकेका है। उसमें ६८ श्लोक हैं। इस तीर्थमें मूलमंदिर-नामकी एक इमारत है। खम्भात (बंदर)के रहनेवाले सेठ तेजपाल सौवर्णिकने, १६५० संवत्में, उसका जीर्णोद्धार किया था। यह लेख उसी जीर्णोद्धारसे संबंध रखता है। तेजपाल अमीर आदमी था। विख्यात जैन विद्वान् हीरविजयसूरिके उपदेशसे उसने यह उद्धार कराया था। लेखमें उद्धारकर्त्ताके वंश आदिका वर्णन तो है ही, हीरविजयसूरिके पूर्ववर्त्ती आचार्य्यों और उनके शिष्योंकाभी वर्णन है। यह वही हीरविजय हैं जिनको अकबरने गुजरातसे सादर बुलाकर उनका सम्मान किया था और उनकी प्रार्थनापर सालमें कुछ दिनोंतक के लिये प्राणिहिंसा बंद करदी थी। जज़िया नामक कर भी माफ कर दिया था। इस लेखमें हीरविजयसूरिके विषयमें लिखा है—

देशाद् गुर्जरतोऽथ सूरिवृषभा आकारिताः सादरं।
श्रीमत्साहिअकब्बरेण विषयं मेवातसंज्ञं शुभम्॥

\+ + + + +

यदुपदेशवशेन मुदं दधन् निखिलमण्डलवासिजने निजे।
मृतधनञ्च करञ्च सजीजिआ-भिधमकब्बरभूपतिरत्यजत्॥

इससे यहभी सूचित हुवा कि किसीके मरजानेपर उसका

धन जो लेलिया जाता था उसका लेनाभी अकबरने बंद कर दिया।

कई वर्ष पूर्व हीरविजयसूरिका विस्तृत चरित सरस्वतीमें प्रकाशित हो चुका है। उसमें भी इन बातोंका वर्णन है। इस लेखका सारांश लिखनेमें संपादक महाशयने एक जगह लिखा है—अने पोतानी पासे जो म्होटो पुस्तक भण्डार हतो ते सूरिजीने समर्पण कर्यो।" पर मूललेखसे यह बात साबित नहीं होती। उसमें तो सिर्फ इतनाही लिखा है कि—

यद्वाग्भिर्मुदितश्चकार करुणास्फूर्जन्मनाः पौस्तकं।
भाण्डागारमपारवाङ्मयमयं वेश्मेव वाग्दैवतम्॥

इसका अन्वय इस प्रकार हो सकता है—"(यः अकब्बरः) अपारवाङ्मयमयं पौस्तकं भाण्डागारं, वाग्दैवतं वेश्मेव, चकार।" अर्थात् जिस अकबरने अपार वाङ्मयमय पुस्तकागार, सरस्वतीके घरके सदृश, (निम्र्माण) किया। इससे इतनाही सूचित होता है कि अकबरने हीरविजयसूरिकी आज्ञा या प्रार्थनासे कोई पुस्तकालय खोला, यह नहीं कि उसने अपना पुस्तकसंग्रह सूरिजीको दे डाला।

जीर्णोद्धार किये गये इस मंदिरकी प्रतिष्ठा सेठ तेजपालने, संवत् १६५० में, हीरविजयसूरिसे कराई। खम्भातसे वह वहां खुद आया और प्रतिष्ठापनकार्यका संपादन किया। यथा—

शत्रुञ्जये गगनबाणकलामितेऽब्दे
यात्रां चकार सुकृतायसतेजपालः।

चैत्यस्य तस्य सुदिने गुरुभिः प्रतिष्ठा
चक्रे च हीरविजयाभिधसूरिसिंहैः ॥

विक्रमसंवत्की तेरहवीं शताब्दीमें गुजरातके अणहिल्लपुर (वर्तमान पाटन) नगरमें चौलुक्यवंशी वीरधवल नाम राजा राज्य करता था। वह बड़ा पण्डित था और सुकविभी था। उसकी रचीहुई कितनीही पुस्तकोंका पता-चला है। कुछ शायद प्रकाशितभी होगई हैं। उसका प्रधान सचिव था वस्तुपाल। उसके एक भाईका नाम था तेजपाल। पर यह तेजपाल खम्भातनिवासी सेठ तेजपाल नहीं। वस्तुपाल तो वीरधवलका महामात्य था और साथही महाकविभी था, महादानीभी था और महाधार्मिकभी था। उसका भाई धवलका नगर (वर्तमान धोलका) में मुद्राव्यापार अर्थात् रुपये पैसेका रोज़गार करता था। वह शायद गुर्जरनरेशका अमात्यभी था। इन दोनों भाईयोंने गिरिनार पर्वतपर कितनेही मंदिर बनाये और लम्बे २ लेख खुदवाकर अपने कीर्तिकलापका उल्लेख कराया। गिरिनारके लेखोंमेंसे पहिले ९ लेखोंमें इन दोनों भाईयोंके वंशादि तथा कार्योंका विस्तृत वर्णन है। इन लेखोंमेंसे कुछ लेख तो डाक्टर जेम्स बर्जेसने पहिले पहिले प्रकाशित किये थे। पर पीछेसे सभी लेख एक और अंगरेज़ी पुस्तक (The Revised Lists of Antiqu arian Remains in the Bombay Presidency, Vol, VIII) में प्रकाशित हुये हैं। "गिरिनार इन्सक्रिपशन्स" नामक पुस्तकमेंभी यह छपे हैं। पर मुनिवर जिनविजयजीका कहना है कि उनके अंग्रेजी अनुवादमें

बहुत भूलें रह गई हैं। उनका निरसन आपने अब अपनी इस पुस्तकमें कर दिया है। और टीका टिप्पणियों तथा आलोचनाओंके द्वारा उनका ऐतिहासिक महत्वभी बहुत बढ़ा दिया है।

विक्रमसंवत् १२८८ के एक शिलालेखमें वस्तुपालकी दानशीलताका वर्णन इसप्रकार किया गया है—

भित्वा भानुं भोजराजे प्रयाते
श्रीमुञ्जेऽपि स्वर्गसाम्राज्यभाजि।
एकः सम्प्रत्यर्थिनां वस्तुपाल-
स्तिष्ठत्यश्रुस्पन्दनिष्कन्दनाय ॥ ४ ॥
पुरा पादेन दैत्यारेर्भुवनोपरिवर्तिना
अधुना वस्तुपालस्य हस्तेनाधःकृतो बलिः ॥ ८ ॥

अर्थात् भोज परलोक पधारे, मुञ्जनेभी स्वर्गसाम्राज्य पाया। अब वैसा कोई नहीं रहा। अब तो अर्थिजनोंकी अश्रुधारा पोंछनेके लिये बस अकेला वस्तुपालही है। सतयुगमें विष्णु भगवान्‌ने अपना पैर ऊपरको बढ़ाकर बलिको पाताल भेज दिया था। इससमय, कलियुगमें, वस्तुपालने अपने हाथसे उस बेचारेको नीचे कर दिया।

गिरिनारवाले वस्तुपालके इन लेखोंमें गद्यभी है और पद्यभी। रचना सरस और सालङ्कार है। ये लेख वस्तुपाल और तेजपालके बनवाये गिरिनारके जैनमन्दिरोंमें शिलाफलकोंपर खुदे हुये हैं। वस्तुपाल जैन-धर्म्मका पक्का अनुयायी था। उसने उसके उत्कर्षके लिये असंख्य धनदान किया।

उसके खुदवाये हुये लेखोंमें जैन कवियोंने उसके गुणोंकी बड़ी प्रशंसा की है।

इतिहासकी दृष्टिसे आबू-पर्वतके जैनमंदिरोंमें खुदेहुये लेख बड़े महत्त्वके हैं। उनमें चालुक्य और परमार वंशी राजाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन है। ये लेख बड़े २ हैं। इनकी संख्या २०८ है। इनमेंसे ६८ लेख अकेले एकही मंदिरमें हैं। इस मंदिरका नाम है "लूणसिंह वसहिका।" आबूके प्राचीन लेखोंमेंसे कुछ तो भिन्न २ कई पुस्तकोंमें पहिलेभी प्रकाशित हो चुके हैं। पर सब लेख कहीं नहीं छपे। वे सब पहिलीही वार इस पुस्तमें संगृहीत हुये हैं। आबूमेंभी गिरिनारकी तरह पूर्वोक्त बंधुद्वय, वस्तुपाल और तेजपाल की तूती बोल रही है। यह दोनों भाई आबूमेंभी अतुल धन खर्च करके मन्दिरोंका निर्म्माण और मूर्त्तियोंकी संस्थापना कर गये हैं। इन मंदिरोंकी कारीगरी ग़ज़बकी है। बड़े बड़े इंजीनियर और शिल्पकलाकुशल लोगभी इन्हें देखकर हैरतमें आजाते हैं। इन लेखोंकी कोईकोई कविता बड़ीही हृदयहारिणी है। उसके दो एक उदाहरण लीजिये।

तस्यानुजो विजयते विजितेन्द्रियस्य
सारस्वतामृतकृताद्भुतहर्षवर्षः।
श्रीवस्तुपाल इति भालतलस्थितानि
दौस्थ्याक्षराणि सुकृती कृतिनां विलुम्पन् ॥

अर्थात् वस्तुपाल अमृतवर्षी कवि है और विद्वानोंके भालतलपर लिखे गये दुरक्षरोंको मिटानेवाला है।

अन्वयेन विनयेन विद्यया
विक्रमेण सुकृतक्रमेण च ।
क्वापि कोऽपि न पुमानुपैति मे
वस्तुपालसदृशो दृशोः पथि ॥

अर्थात् वंश, विनय, विद्या, विक्रम और पुण्यके संबंधमें वस्तुपालकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं । वस्तुपालकी पत्नी ललितादेवी और पुत्र जैत्रसिंहकीभी प्रशंसामें कितनीही उक्तियां हैं । इसीतरह उसके भाई तेजपालकाभी खूब गुणगान किया गया है ।

मारवाड़में मेड़तानामक नगरसे १४ मीलपर एक गांव है—केकिन्द । वहां पार्श्वनाथके मंदिरमें जो शिलालेख है उसमें राष्ट्रकूट अर्थात् राठौड़वंशके कितनेही राजाओंका वर्णन है । यथा—मालदेव, उदयसिंह और सूरसिंह । यह सब मरुदेशहीके नरेश थे । उदयसिंहके विषयमें लिखा है—

राज्ञां समेषामयमेव वृद्धो वाच्यस्तदन्यैरथ वृद्धराजः ।
यस्येति शाहिर्विरुदं स दद्यादकब्बरो बब्बरवंशहंसः ॥ १२ ॥

अर्थात् बाबरवंशके राजहंस अकबरने यह आज्ञा दी कि उदयसिंहको लोग वृद्धराज कहा करें, क्योंकि वे सब नरेशोंमें वयोवृद्ध हैं । उदयसिंहके बेटे सूरसिंहकी तारीफ़—

राज्यश्रियां भाजनमिद्धधामा प्रतापनन्दीकृतचण्डधामा ।
सपत्नानागावलिनाशसिंहः पृथ्वीपती राजति सूरसिंहः ॥१४॥

सुरेषु यद्वन्मघवा विभाति यथैव तेजस्विषु चण्डरोचिः ।
न्यायानुयायिष्विव रामचन्द्रस्तथाधुना हिन्दुषु भूध्रुवोऽयम्१९

पिछले पद्यमें "हिन्दुषु" पद ध्यानमें रखने लायक़ है ।

अच्छा तो इस उपयोगी और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका इतनाही परिचय बहुत हो गया । जो लोग गुजराती नहीं जानते, पर संस्कृतके प्राचीन लेखों और पुस्तकोंके प्रेमी हैं, वेभी इस पुस्तकके अवलोकन और संग्रहसे लाभ उठा सकते हैं । और नहीं तो, इसके कितनेही लेखोंके सरस पद्योंसे अपना मनोरञ्जन अवश्य ही कर सकते हैं ।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी ।